'मास्टर' मणिमालाया २४९ संख्यको मणि (न्यायविभागे ११)

नैयायिकश्रीविश्वनाथपञ्चाननरचितकारिकावलीसहित-

न्यायसिद्धान्तमुक्तावल्याः

अनुमानखण्डम्

[विविधराजकीयसंस्कृतपरीक्षासु आचार्यकक्षाया निर्द्धारितम्]

काशीस्थराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालये कृतन्यायशास्त्राध्यापनेन न्यायव्याकरणाद्यनेक-
शास्त्रीयग्रन्थनिर्मात्रा स्वर्गीय पण्डितराज शास्त्रार्थजगत्प्रसिद्ध संस्कृतानुकवि
चक्रवर्ति श्रीवेणीमाधवशास्त्रिणामात्मजेन काशीस्थ राजसम्बद्ध
संस्कृतादर्श शास्त्रार्थमहाविद्यालयप्रधानाचार्येण सुप्रसिद्ध सरयू
पारीणकुलेन शास्त्रार्थव्याख्यानवाचस्पतिना श्रीराज
नारायणशास्त्रिशुक्लमहोदयेन स्वरचितप्रभाख्य
संस्कृतभाष्येण सरलतमाख्यहिन्दीटीकया
च परिष्कृत्य सम्पादितम्।



तदिदम्—
काशीस्थ—'संस्कृत-बुकडिपो' स्वामिभिः
'मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स महोदयैः
स्वीये 'मास्टर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स' इत्याख्यमुद्रणालये
मुद्रापयित्वा प्रकाशितम्।



प्रथम संस्करणम्] सन् १९५४ ई० [मूल्यम् ।।।)

प्रकाशक —
बी० एन० यादव,
अध्यक्ष, मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस-१

मुद्रक —
मास्टर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स
[illegible], बनारस-१

प्रवृत्तिनिमित्तम्

न्यायशास्त्रप्रिय महानुभाव !

तार्किकपञ्चानन श्रीविश्वनाथभट्टाचार्यरचित कारिकावलीसहित न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीग्रन्थ में न्याय तथा वैशेषिक दोनों दर्शनों के माध्यम से पदार्थनिरूपण की जो अपूर्वपद्धति प्राप्य है, वह अन्यत्र नहीं। आस्तिक रचयिता ने शिष्टाचारपरम्पराप्राप्त अनुबन्धचतुष्टय एवम् मङ्गलवाद का उत्तमशास्त्रार्थ ग्रन्थ के आरम्भ में ही विशद किया है। गुरुशिष्यसम्बन्ध का दिव्य आदर्श तथा शिष्य पर गुरुदेव की अनुपम कृपा का प्रवाह 'राजीवदयावशवद' इस पंक्ति से स्फुट है।

नास्तिकदर्शनों के कुतर्कों ने यथाशक्ति ईश्वर के खण्डन में प्रयत्न किया था परन्तु इस ग्रन्थकार ने मङ्गलाचरण से ही ईश्वरसिद्धि के अकाट्यतर्क उपस्थित किये हैं।

इन्होंने सर्वप्रथम कारिकावली की रचना की, जिसमें १६८ कारिकायें हैं। बिना किसी प्रकार की टीका अथवा भाष्य के जब उस ग्रन्थ का सरलतया बोध सम्भव न हुआ तो अपने शुश्रूषुशिष्य राजीवलोचन की प्रार्थना पर इन्होंने स्वयम् अपने ग्रन्थ की टीका के रूप में न्यायसिद्धान्त-मुक्तावली की रचना की। वास्तव में इस न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के अध्ययन से तर्कशास्त्र का पूर्णतया अवगम हो जाता है। इसके मुख्य ४ खण्ड हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द। अपनी विशेषता के लिये प्रत्येक प्रसिद्ध है। इन्हीं असाधारणगुणों के कारण मध्यमा से लेकर आचार्य तक की परीक्षाओं में इसे स्थान प्राप्त है। जिन्होंने प्रत्यक्ष खण्ड से इसका स्वाध्याय नहीं किया है ऐसे साहित्य तथा व्याकरणाचार्य परीक्षा के छात्रों को अनुमानखण्ड तथा शब्दखण्ड का अध्ययन अवश्य ही कठिन होगा। गत कई वर्षों से मेरा विचार इस पर सरल टीका लिखने का था परन्तु कार्यव्यस्ततावश न कर सका। आज के विद्यार्थी किसी भी परीक्ष्यग्रन्थ की सरलसंस्कृतटीका साथ ही हिन्दी अनुवाद की प्रतीक्षा करते हैं।

❀ कारिकावली ❀

ज्ञायमानं लिङ्गं तु करणं न हि ।
अनागतादिलिङ्गेन न स्यादनुमितिस्तदा ॥६७॥

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

अत्र प्राचीनास्तु व्याप्यत्वेन ज्ञायमानं लिङ्गमनुमितिकरणमिति वदन्ति, तद् दूषयति ज्ञायमानमिति। लिङ्गस्याऽनुमित्यकरणत्वे युक्तिमाह अनागतादीति। यद्यनुमितौ लिङ्गं करणं स्यात्, तदाऽनागतेन लिङ्गेन विनष्टेन चाऽनुमितिर्न स्यात्, अनुमितिकरणस्य तदानीमभावादिति ॥ ६६-६७ ॥

• प्रभा •

एवं च पूर्वं साध्यहेतुसहचारदर्शनेन व्याप्तिज्ञानम्, ततः कदाचित् पर्वतादौ हेतुमान् पक्ष इति पक्षधर्मता, ततः व्याप्तिस्मरणम्, ततः परामर्शः व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानरूपः, ततोऽनुमितिर्जायते 'पर्वतो वह्निमान् धूमात् महानसवत्' इत्यादि। इति प्रक्रिया।

अनुमायां व्याप्तिधीः करणं व्यापारः तु परामर्शः भवेत्, हि ज्ञायमानं लिङ्गं तु करणं न, तदा अनागतादिलिङ्गेन अनुमितिः न स्यात् इति कारिकान्वयः।

लिङ्गम् = हेतुः, ज्ञायमानम् = ज्ञायते इति ज्ञानच्, वर्त्तमानकालिकज्ञानविषयीभूतम्। तदा = केवलस्य वर्त्तमानस्य हेतोरनुमितिकरणत्वे। अनागतादीति। अनागत = भविष्यत्, आदिना अतीतलिङ्गसंग्रहः। अनुमानप्रकारश्चेत्थम्—इदं गृहम् अतीतवह्निमत् अतीतधूमात्, इदं गृहम् भविष्यद्वह्निमत् भविष्यद्धूमात् महानसवत्। नवीनमते तु न केवलस्य लिङ्गस्य करणता, अपितु लिङ्गज्ञानस्य। तथा च लिङ्गज्ञानस्य कालत्रयेऽपि तुल्यत्वान्नानुपपत्तिरिति ॥६६-६७॥

• सरस्वती •

अनुमा (अनुमिति) में परामर्श व्यापार तथा व्याप्तिज्ञान करण होता है, वर्तमान काल में ज्ञात होनेवाला लिङ्ग (हेतु) करण नहीं होता, अन्यथा अतीत तथा भविष्यत् लिङ्ग से अनुमिति नहीं बन सकेगी।

अनुमिति कैसे होती है ! इसे उदाहरण से बतला रहे हैं—जैसे जिस पुरुष

❀ कारिकावली ❀

व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः परामर्श उच्यते ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

व्याप्यस्येति । व्याप्तिविशिष्टस्य पक्षेण सह वैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमनुमितौ जनकं, तच्च 'पक्षे व्याप्य' इति ज्ञानं 'पक्षो व्याप्यवान्' इति ज्ञानं वा, अनुमितिस्तु 'पक्षे व्याप्य' इति ज्ञानात् 'पक्षे साध्यम्' इत्याकारिका, 'पक्षो व्याप्यवान्' इति ज्ञानात् 'पक्षः साध्यवान्' इत्याकारिका ।

❀ प्रभा ❀

परामर्शं कथयति व्याप्यस्येति । पक्षेण सहेति । अत एव ज्ञानद्वयं फलति । कारणस्वरूपद्वये कार्यस्वरूपद्वयं स्पष्टयन्नाह अनुमितिस्त्विति । परस्परजन्ये व्यभिचारवारणन्तु अभ्यवहितोत्तरत्वनिवेशबुद्ध्या ।

❀ सरस्वती ❀

ने कभी महानस (रसोई घर) में वह्नि तथा धूम को देखकर अधिक देश में रहने के कारण वह्नि व्यापक तथा अल्पदेश में रहने के कारण धूम व्याप्य होता है इस प्रकार व्याप्ति ज्ञान किया पश्चात् वही पुरुष जब घूमने के बहाने पहाड़ की ओर गया तब उसने पर्वत में निरन्तर निकलते हुये धूम को देख पूर्व में हुई व्याप्ति का स्मरण करता है, उसके बाद उसे 'वह्निव्याप्यधूमवाला यह पर्वत' ऐसा परामर्शज्ञान होता है, तदनन्तर 'पर्वत वह्निवाला है, धूम से, महानस की तरह' इस प्रकार की अनुमिति होती है ॥ ६६-६७ ॥

व्याप्ति से विशिष्ट हेतु का पक्ष में वृत्तित्वज्ञान ही परामर्श कहा जाता है । वह दो प्रकार का १ पक्ष में व्याप्य २ पक्ष व्याप्यवाला । अनुमिति तो प्रथम ज्ञान से पक्ष (पर्वत) में साध्य (वह्नि) ऐसी, तथा द्वितीयज्ञान से पक्ष (पर्वत) साध्य (वह्नि) वाला ऐसी होती है ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

द्विविधादपि परामर्शात् पक्षः साध्यवानित्येवाऽनुमितिरित्यन्ये ।

ननु 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इति ज्ञानं विनाऽपि यत्र पर्वतो धूमवानिति प्रत्यक्षं, ततो 'वह्निव्याप्यो धूम' इति व्याप्तिस्मरणं, तत्र ज्ञानद्वयादेवाऽनुमितेर्दर्शनात् व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं न सर्वत्र कारणं, किन्तु व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानत्वेन कारणत्वस्याऽऽवश्य-

• प्रभा •

अनुभवमनुरुध्यान आह द्विविधादपीति । नचैवमेकत्र कार्ये कारणद्वयस्वीकारे व्यतिरेकव्यभिचारो दुर्वार इति वाच्यम्, पक्षनिष्ठविषयतानिरूपितव्याप्यनिष्ठविषयताशालिज्ञानत्वेन ज्ञानद्वयानुगमादेकरूपेण व्यभिचाराप्रसक्तेः ।

नन्विति । इदम् परामर्शखण्डकानाम् मीमांसकानाम् मतम् । तन्मते पक्षधर्मताव्याप्तिस्मरणाभ्यामेवानुमितेः सिद्धत्वात् न परामर्शावश्यकता । वैशिष्ट्यम् = सम्बन्धः । सर्वत्रेति । यत्र क्वचन स्थलविशेषे तस्य कारणत्वेऽपि सर्वत्र तत्स्वीकारोऽनुचित इति ध्वनितम् ।

स्वाभिमतं स्पष्टयति किन्त्विति । व्याप्यो धूमः, व्याप्यता धूमनिष्ठा, व्याप्यतावच्छेदक धूमत्वम्, तत्प्रकारकम् पक्षधर्मताज्ञानम् 'धूमवान् पर्वतः' इति समन्वयः ।

• सरस्वती •

किसी का मत है कि दोनों प्रकार के ज्ञान से पक्ष (पर्वत) साध्य (वह्नि) वाला ऐसी एकही अनुमिति होती है ।

प्रश्न—वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इस लम्बे चौड़े ज्ञान के विना भी जहाँ पर पर्वत धूमयुक्त है ऐसा प्रत्यक्ष, तदनन्तर वह्निव्याप्य धूम ऐसा व्याप्तिस्मरण हुआ, वहाँ पर दोही ज्ञान से अनुमिति उत्पन्न हो जाती है । ऐसी स्थिति में परामर्श को अतिरिक्त कारण मानने की क्या आवश्यकता ? किन्तु व्याप्यतावच्छेदक-

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

कत्वात् तत्र विशिष्टज्ञानकल्पने गौरवाच्चेति चेन्न—

व्याप्यतावच्छेदकाज्ञानेऽपि वह्निव्याप्यवानिति ज्ञानादनुमित्युत्पत्तेः लाघवाच्च व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानत्वेन हेतुत्वम् ।

किं च 'धूमवान् पर्वत' इति ज्ञानादनुमित्यापत्तिः, व्याप्यतावच्छेदकीभूतधूमत्वप्रकारकस्य पक्षधर्मताज्ञानस्य सत्त्वात् ।

न च गृह्यमाणव्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानस्य हेतुत्वान्न दोष

• प्रभा •

अव्याप्त्या खण्डयति व्याप्यतेति । सिद्धान्ते वह्निव्याप्यवानितिज्ञानादपि पक्षधर्मताख्याद् भवन्ती अनुमितिरिदानीं व्याप्यतावच्छेदकधूमत्वप्रकारकत्वविरहेण न स्यादिति भावः । गौरवमपि तत्रेति तदपेक्षया लघुभूतमाहात्म्यः व्याप्तिप्रकारकेति । आपत्तिमपि तत्र दत्त्वा स्वमतं द्रढयति किं चेति । आपत्तिं निराचिकीर्षुराह न चेति । यदाचिदुत्पन्नस्य ज्ञानमात्रस्य न कारणत्वमपि तु वर्तमानकालिक

• सरस्वती •

प्रकारक पक्षधर्मताज्ञान ही कारण बने, विशिष्ट (परामर्श) ज्ञान के मानने में गौरव भी होगा ।

उत्तर—व्याप्यतावच्छेदक के अज्ञान में भी वह्निव्याप्यवान् इस ज्ञान से अनुमिति होती थी अब न हो पावेगी, लाघव भी है कि जैसा कार्यकारणभाव जो आपने माना है उसकी अपेक्षा व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञान को ही कारण बनाया जाय ।

और भी धूमवान् पर्वत इस ज्ञानमात्र से भी अनुमिति होने लगेगी, क्योंकि व्याप्य (धूम) व्याप्यता (धूम में) व्याप्यता का अवच्छेदक (धूमत्व) है प्रकार (विशेषण) जिस ज्ञान में ऐसा ज्ञान वह हो गया ।

प्रश्न—वर्तमानकाल में गृहीत होते हुये व्याप्यतावच्छेदकप्रकारक पक्षधर्मताज्ञान को कारण मानेंगे, इस से पूर्वोक्त दोष का वारण हो जायगा ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

इति वाच्यम्, चैत्रस्य व्याप्तिग्रहे मैत्रस्य पक्षधर्मताज्ञानादनुमित्यापत्तेः ।

यदि तत्पुरुषीयगृह्यमाणव्याप्यतावच्छेदकप्रकारकं तत्पुरुषीयपक्षधर्मताज्ञानं तत्पुरुषीयानुमितौ हेतुरित्युच्यते, तदाऽनन्तकार्यकारणभावः । मन्मते तु समवायसम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानं समवायसम्बन्धेनाऽनुमितिं जनयतीति नाऽनन्तकार्यकारणभावः ।

यदि तु व्याप्तिप्रकारकज्ञानं पक्षधर्मताज्ञानं च स्वतन्त्रं कारणमित्युच्यते

• प्रभा •

ग्रहणविषयीभूतत्वन्तत्रापेक्षित इति भावः । सामानाधिकरण्य (तत्पुरुषीयत्व) निवेशेनापत्तिं वारयितुमाह तत्पुरुषीयेति । नैयायिको दूषयति तदेति । तत्पुरुषभेदेन अनन्तानन्तकार्यकारणभावः स्फुट एव । स्वमते तादृशमानन्त्यम् परिहरति मन्मत इति । अयम्भावः, समवायसम्बन्धेन यत्रात्मनि व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानं तत्रैव समवायेनानुमितिरिति न क्षतिः ।

तत्पुरुषीयत्वनिवेशेऽपि व्याप्तिप्रकारक पक्षधर्मताज्ञान च स्वातन्त्र्येण कारणमिति नानन्त्यापत्तिरिति मीमांसकोक्त विकल्पमित्युपस्थापयति यदि त्विति । तथा

• सरस्वती •

उत्तर—इस प्रकार के उत्तर से चैत्र को व्याप्तिज्ञान तथा मैत्र को पक्षधर्मता ज्ञान होने पर अनुमिति होने लगेगी । अतः यह उचित नहीं ।

अगर 'उस पुरुष के द्वारा ग्रहण होता हुआ व्याप्यतावच्छेदकप्रकारक उसी पुरुष का पक्षधर्मताज्ञान उसी पुरुष की अनुमिति का कारण हो' ऐसा कार्यकारण भाव बनालें तो अन्य के व्याप्तिज्ञान तथा अन्य के पक्षधर्मताज्ञान से अनुमिति की आपत्ति दूर हो जायगी, परन्तु पुरुषभेद से अनन्त कार्यकारणभाव हो जायेंगे ।

मेरे (नैयायिक के) मत में तो समवायसम्बन्ध से व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञान समवायसम्बन्ध से अनुमिति को उत्पन्न करता है, इस तरह एक ही कार्यकारण-भाव से काम चल जाता है ।

अगर व्याप्तिप्रकारकज्ञान तथा पक्षधर्मताज्ञान दोनों ही स्वतन्त्ररूप से कारण,

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

तदा कार्यकारणभावद्वयं, 'वह्निव्याप्यो धूम आलोकवांश्च पर्वत' इति ज्ञानादप्यनुमितिश्च स्यात् । इत्थं च यत्र ज्ञानद्वयं, तत्राऽपि विशिष्टज्ञानं कल्पनीयम् , फलमुखगौरवस्यादोषत्वात् ।

* प्रभा *

च तथाविधानन्यथाकारणेऽपि कार्यकारणभावद्वयमनिवार्यं स्यादिति भावः ।

ननु नैयायिकमतेऽपि विशेष्यविशेषणभावव्यभिचारेण (विनिगमकाभावेन) व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानत्वेन पक्षधर्मताविषयकव्याप्तिप्रकारकज्ञानत्वेन वा हेतुतेति न किञ्चिद् वैधर्म्यमिति चिन्तायामाह वह्निव्याप्य इति । धूमेन सह व्याप्ति ग्रह आलोकेन च पक्षधर्मतेति परामर्शादस्मादनुमित्यापत्तिरनिवार्या स्यादिति तात्पर्यम् ।

न च यत्र व्याप्तिपक्षधर्मत्वग्राहकयोरेवानुमितिस्तत्र पूर्वप्रतिपादिते स्थलविशेषे विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानरूपव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानात्मकपरामर्शस्य कारणत्व कल्पे कल्पमाने गौरवमापद्यतैवेति वाच्यम्, फलमुखगौरवं न दोषायेति न्यायेन अन्यथावश्यकस्य परामर्शस्य तत्रापि स्वीकारे क्षत्यभावादित्याह इत्थं चेति ।

परामर्शकारिकायाम् 'व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः परामर्श उच्यते इति व्याप्यो

* सरस्वती *

कहें तो भी दो कार्यकारणभाव हो जायेंगे। साथ ही 'वह्निव्याप्यधूम आलोकवान् पर्वत, इस समूहालम्बनज्ञान से भी अनुमिति उत्पन्न होने लगेगी।

अतः जहाँ पर दो ज्ञान से भी काम चलता हो वहाँ पर भी अन्यत्र आवश्यक रूप से माने गये गुरुभूत भी परामर्शज्ञान को कारण मानना ही पड़ेगा। क्योंकि जिस गौरव से उत्तम फल होता हो वहाँ लाघव की उपेक्षा कर उस गौरव को भी स्वीकार करना चाहिये।

❀ कारिकावली ❀

व्याप्तिः साध्यवदन्यस्मिन्नसम्बन्ध उदाहृतः ॥ ६८ ॥

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

व्याप्यो नाम व्याप्त्याश्रयः, तत्र व्याप्तिः केत्यत आह व्याप्तिरिति।

• प्रभा •

व्याप्यः, स च व्याप्त्याश्रयो व्याप्तिमान्, तत्र व्याप्तिः केति प्रश्न आह व्याप्तिरिति। साध्यवदन्यस्मिन्, असम्बन्धः, व्याप्तिः उदाहृता इत्यन्वयः। साध्यः अस्ति अस्मिन्निति साध्यवान्, साध्यवतः अन्यः तस्मिन्। सम्बन्धः वृत्तित्वम्, असम्बन्धो वृत्तित्वाभावः। तथा च साध्यवद्भिन्ननिरूपितवृत्तित्वाभावो व्याप्तिरित्यर्थः। यस्मिन् साध्यते स पक्षः, यथा पर्वतः। यत् साध्यते तत् साध्यम्, यथा वह्निः। येन साध्यते तत् साधनं हेतुः, यथा धूमः।

इदन्तु पूर्वमवधार्यम्। किमपि लक्षणं निर्दुष्टमेव भवति यत्र अव्याप्ति-अतिव्याप्ति असम्भवदोषा न स्युः, एकस्यापि सत्त्वं दूषयत्येव। अतः दोषा इमे ज्ञातव्याः।

कुत्रापि लक्ष्ये लक्षणस्यागमनमव्याप्तिः, यथा गोः कपिलत्वे लक्षणे श्वेतगवादौ तल्लक्षणं न यास्यतीति अव्याप्तिदोषग्रासः। अलक्ष्ये लक्षणस्य गमनमतिव्याप्तिः, यथा शृङ्गित्वे लक्षणे यावद्गोषु तद्गमनेऽपि गोऽतिरिक्तमहिषादावपि तस्य (शृङ्गित्वस्य) सत्त्वेन अतिव्याप्तिदोषग्रासः। लक्ष्यमात्रे लक्षणागमनमसम्भवः, यथा एकशफवत्त्वे लक्षणे कृते गोमात्रस्य एकशफवत्त्वाभावेन कुत्रापि गवि लक्षणं न गच्छति इति असम्भवग्रासः।

तथा च गोः तानि लक्षणानि विहाय सास्नादिमत्त्वम् लक्षणं क्रियते [illegible] न

• सरस्वती •

व्याप्य (व्याप्ति का आश्रय) उस में व्याप्ति क्या है? इस शङ्का पर व्याप्ति का निरूपण करते हैं।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

वह्निमान् धूमादित्यादौ साध्यो वह्निः, साध्यवान् महानसादिः, तदन्यः जलहृदादिः, तदवृत्तित्वं धूमस्येति लक्षणसमन्वयः । धूमवान् वह्नेरित्यादौ

● प्रभा ●

कस्यापि दोषस्य सम्भावनेति दोषत्रयशून्यं निर्दुष्टं तदुच्यते । प्रकृते व्याप्तिलक्षणस्थलेऽपि दोषाणामेषाम् परिहार आवश्यकः । यके सद्धेतवो यैरनुमितिः सम्पाद्यते, तेषु व्याप्तिलक्षणसमन्वयः । तेषु कुत्रापि विशेषे लक्षणागमनेऽव्याप्तिः स्यात् । यकेऽसद्धेतवः हेत्वाभासा वा, तेषु लक्षणगमनं नाभीष्टम्, ते च नानुमितिं सम्पादयितुं क्षमन्ते इति तेषु लक्षणगमनं भवत्यति व्याप्तिदोषः । क्रियमाणं व्याप्तिलक्षणं कुत्रापि सद्धेतुमात्रे न गमिष्यति चेद् भविष्यत्यसम्भवो दोष इत्यनुसन्धेयते सद्भिः । येन सम्बन्धेन साध्यं स साध्यतावच्छेदकः सम्बन्धः । यथा पर्वतो वह्निमान् इत्यत्र संयोगः । येन रूपेण साध्यं स साध्यतावच्छेदकधर्मः, यथा वह्निनिष्ठं वह्नित्वम् । येन सम्बन्धेन हेतुः स हेतुतावच्छेदकः सम्बन्धः, यथा संयोगेन धूमस्य हेतुतेति संयोगः । येन रूपेण हेतुः स हेतुतावच्छेदकधर्मः, प्रकृते धूमवृत्ति धूमत्वम् ।

यथा पर्वतो वह्निमान् धूमात् महानसवत् इति स्थलम् ।

समन्वयप्रकारस्तु साध्यो वह्निः, साध्यवान् महानसादि, तद्भिन्नः जलहृदादि, तन्निरूपितवृत्तित्व मत्स्यादेः, वृत्तित्वाभावो धूमस्येति भवति स व्याप्तिमान् । सद्धेतुरनुमितिसम्पादनक्षमः । अयोगोलकं धूमवद् वह्नेः इति व्यभिचारिस्थले च लक्षणं न याति, तथाहि—तत्र साध्यो धूमः, साध्यवान् पर्वतमहानसादिः ([illegible] यत्र

● सरस्वती ●

साध्यवान् से अन्य में हेतु के न रहने को ही व्याप्ति कहते हैं । समन्वय वह्निमान् धूमात् यहाँ पर साध्य है वह्नि, साध्यवान् है महानस पर्वत आदि । उस से भिन्न हुआ जलाशय, उस में धूम नहीं रहता ।

व्यभिचारिस्थल 'धूमवान् वह्नेः' इत्यादि में साध्यवान् से भिन्न तप्तलौहपिण्ड

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

साध्यवदन्यासिद्धत्वाय पिण्डादौ वह्नेः सत्त्वान्नाऽतिव्याप्तिः ।

अत्र येन सम्बन्धेन साध्यं तेनैव सम्बन्धेन साध्यवान् बोध्य', अन्यथा समवायसम्बन्धेन वह्निमान् वह्नेरवयव', तदन्यो महानसादिः, तत्र धूमस्य विद्यमानत्वादव्याप्तिप्रसङ्गात् ।

साध्यवदन्यश्च साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवान् बोध्यः, तेन

• प्रभा •

धूमस्तिष्ठति) तद्भिन्नो यथा जलादिः तथा तप्तायःपिण्डमपि, तत्र वह्निहेतोः वृत्तित्वमेव न वृत्तित्वाभाव इति न लक्षणातिव्याप्तिः ।

ननु साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तित्वाभावमात्रस्य लक्षणत्वे 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' अत्रैव अव्याप्तिः, तथा हि, साध्यो वह्निः, साध्यवान् समवायसम्बन्धेन वह्नेरवयवः, तद्भिन्नः पर्वतादिः, तन्निरूपिता वृत्तितैव धूमे, इति शङ्कायां समाधत्ते अत्रेति । अयम्भावः, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवान् ग्रहीतव्यः, [illegible] च संयोगसम्बन्ध एव तथा । तथा च संयोगसम्बन्धेन साध्यवान् न वह्न्यवयव', अपितु पर्वतादि', तद्भिन्नो जलादिः, तन्निरूपितवृत्तित्वाभावो धूमेऽस्त्येव इति नाव्याप्तिसम्भावना ।

नन्वेवमपि प्रकृतेऽव्याप्तिः, तथाहि साध्यो वह्निपदेन यत्किञ्चिद्वह्निः महानसीय', साध्यवान् संयोगसम्बन्धेन महानसम्, तद्भिन्ने पर्वतादौ धूमस्य हेतोर्वृत्तितैव न वृत्तित्वाभाव इति चेत्तत्राह साध्यवदन्यश्चेति । साध्यवत्त्वेन अवच्छिन्ना

• सरस्वती •

आदि में वह्निरूप हेतु के रह जाने से लक्षण की अतिव्याप्ति न हुई ।

यहाँ पर जिस सम्बन्ध से साध्य हो उसी सम्बन्ध से साध्यवान् भी लेना चाहिये । अन्यथा 'पर्वतो वह्निमान्' यहाँ पर लक्षण नहीं जायगा तथा अव्याप्ति-दोष हो जायगा । क्योंकि समवायसम्बन्ध से साध्यवान् (वह्निमान्) वह्नि [illegible] अवयव, उस से भिन्न महानस आदि, उस में धूम रहता ही है ।

साध्यवत् से भिन्न भी साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवान् लेना

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

यत्किञ्चिद्वह्निमतो महानसादेर्भिन्ने पर्वतादौ धूमस्य सत्त्वेऽपि न क्षतिः ।

• प्रभा •

प्रतियोगिता यस्य स साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः भेदः, तद्वान् साध्यवदन्यो भावः । अत्रेदमनुसन्धेयम्, यस्याभावः सोऽभावप्रतियोगी, प्रतियोगिनो भावः प्रतियोगिता, सा प्रतियोगिनि तिष्ठति, प्रतियोगिवृत्तिर्धर्मः प्रतियोगिताया अवच्छेदकः, प्रतियोगिता च तद्धर्मावच्छिन्ना भवति, यो धर्मो यस्यावच्छेदकः स तद्धर्मावच्छिन्नो भवतीति सुस्पष्टप्रतीतेः । यथा घटाभावस्य प्रतियोगी घटः, प्रतियोगिता घटनिष्ठा, प्रतियोगितावच्छेदकम् घटवृत्ति घटत्वम्, इति प्रतियोगिता घटत्वेन अवच्छिन्ना, तथा च घटत्वावच्छिन्ना प्रतियोगिता यस्येदृशोऽभावः घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः घटाभावो व्यवह्रियते ।

प्रकृते च साध्यवान् न (साध्यवदन्यः) इत्याकारको भेदः तत्प्रतियोगी साध्यवान्, प्रतियोगिता साध्यवत्पदार्थे, प्रतियोगितावच्छेदक साध्यवत्त्वम्, तेन धर्मेण अवच्छिन्ना प्रतियोगिता, तादृशप्रतियोगिताकश्च स भेदः, तद्वान् यः तन्निरूपितवृत्तित्वाभावोऽपेक्षित । यत्किञ्चिद्वह्निमान् न (महानसीयवह्निमान् न, पर्वतीयवह्निमान् न, चत्वरीयवह्निमान् न) इति भेदः महानसीयवह्निमत्त्वा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकः, पर्वतीयवह्निमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः, चत्वरीयवह्नि-मत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताको भवति नतु शुद्धवह्निमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक इति न ग्राह्य. । यश्च शुद्धसाध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः स एव वह्निमान् न इत्या-कारकः ग्रहीतव्यः, तदधिकरणं जलह्रदादिरिति तदवृत्तित्वे धूमस्य नाव्याप्तिरिति भावः ।

नन्वेवमपि पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यत्र भवेदव्याप्तिः, तथाहि—साध्यता

• सरस्वती •

चाहिये, अन्यथा यत्किञ्चिद्वह्नि (महानसीय वह्नि) मान् महानसादि से भिन्न पर्वत आदि में धूमके रहने पर अव्याप्तिदोष हो जायगा ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

येन सम्बन्धेन हेतुता तेनैव सम्बन्धेन साध्यवदन्यवृत्तित्वं बोध्यं, तेन साध्यवदन्यस्मिन् धूमावयवे धूमस्य समवायसम्बन्धेन सत्त्वेऽपि न क्षतिः। साध्यवदन्यावृत्तित्वं च साध्यवदन्यवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-

• प्रभा •

वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताको भेदः संयोगेन वह्निमान् न इत्याकारकः, तद्वान् (तदधिकरणम्) यथा जलादिः तथा धूमावयवोऽपि, तत्र साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवति (साध्यवदन्यस्मिन्) धूमावयवे समवायसम्बन्धेन धूमो वर्त्तत एव इति धूमस्य वृत्तितैव (अवयवावयविनोः समवायनियमात्) न वृत्तित्वाभाव इति चेदत्राह येन सम्बन्धेनेति।

अर्थात् साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तिता हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन ज्ञेया। तथा च साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवति मद्वह्निः पूर्वोक्तदिशा ध्रियमाणे धूमावयवे समवायसम्बन्धेन धूमो वर्त्ततामाम का हानिः। हेतुतावच्छेदकेन संयोगसम्बन्धेन तत्र धूमो न वर्त्तते इति हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तित्वाभावस्यैवेति नाव्याप्तिसम्भवः।

नन्वेवमपि अयं पिण्ड धूमवद् वह्ने इत्यत्र अव्याप्तिरस्ति, तथाहि तत्र साध्यो धूमः साध्यतावच्छेदकेन संयोगेन साध्यवान् पर्वतमहानसादिः, तदन्यः जलह्रदादिः, तत्र संयोगेन हेतुतावच्छेदकेन सम्बन्धेन हेतो वह्नेः साध्यवदन्यजलह्रदनिरूपितवृत्तित्वं नास्ति वृत्तित्वाभावः सुतरामिति चेदत्राह साध्यवदन्येति। अर्थात् वृत्तित्वसामान्याभावनिवेशः कार्यः। वृत्तित्वाभावप्रतियोगितायां वृत्तिता

• सरस्वती •

जिस सम्बन्ध से हेतु रहता हो उसी सम्बन्ध से साध्यवदन्यवृत्तित्व भी लेना चाहिये, अन्यथा साध्यवान् से भिन्न धूमावयव में धूम समवायसम्बन्ध से रहता ही है, अव्याप्तिदोष पुनः बना रहेगा।

साध्यवदन्य में अवृत्तित्व का अर्थ वृत्तित्वसामान्याभाव करना चाहिये,

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

काभावः, तेन धूमवान् वह्नेरित्यत्र साध्यवदन्यजलह्रदादिवृत्तित्वाभावेऽपि नाऽतिव्याप्तिः ।

❀ प्रभा ❀

त्वावच्छिन्नत्वं वृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्नत्वं च विवक्षितम् । तथा च पर्वतो वह्निमान् इत्यादौ वह्निमदन्यः जलह्रदादिः, तन्निरूपिता वृत्तिता मीनशैवालादौ, वृत्तित्वाभावः (वृत्तितात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक: वृत्तितात्वेतरधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकश्च शुद्धवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकः) धूमे इति भवति समन्वयः । असद्धेतुस्थले तु साध्यवदन्यजलह्रदनिरूपितवृत्तित्व नास्तीत्याकारकाभावो ग्राह्यः (सामान्यतः साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तित्वाभावो वह्निहेतौ नायाति, यतोहि साध्यधूमवदन्यतप्तायःपिण्डे वह्निर्वर्तत एवेति तथा ग्रहणासम्भवः) तत्राभावीया प्रतियोगिता वृत्तित्वनिष्ठा, प्रतियोगितावच्छेदक वृत्तित्वत्वम् जलह्रदनिरूपितत्वं च । तथा च प्रतियोगिता (वृत्तित्वनिष्ठा) न शुद्धवृत्तित्वत्वावच्छिन्ना अपि [illegible] स्वेतरधर्मावच्छिन्नापीति तादृशोऽभावो न ग्रहीष्यते । किन्तु सामान्यतः साध्यवदन्यतप्तायःपिण्डनिरूपितवृत्तित्वमेव वह्निहेतावस्ति इत्यादिव्याप्तिपरिहारः ।

द्रव्यगुणकर्मसु त्रिषु पदार्थेषु सत्तानाम्नी जातिरेका तिष्ठति एका च गुणकर्मान्यत्व (भेद) विशिष्टा विशिष्टसत्ता, सा च केवलद्रव्ये तिष्ठति । परम् यथा कश्चिज्जनः दण्डादिविशेषणसम्पन्नः स्वकीयनामावस्थातो न भिद्यते किन्तु स एवायमिति लौकिकैर्मन्यते, तथैव विशिष्टसत्तापि शुद्धसत्तातो न भिद्येत 'विशिष्टं शुद्धानातिरिच्यते' इति न्यायात् । एवञ्च व्याप्तिलक्षणस्य पूर्वोक्तस्य 'इदं द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात्' इति स्थले सद्धेतौ स्यादव्याप्तिः । तथाहि—साध्यम्

❀ सरस्वती ❀

अन्यथा 'धूमवान् वह्नेः' इस व्यभिचारिस्थल में अतिव्याप्तिदोष होगा (लक्षण चला जायगा) क्योंकि साध्य (धूम) वान् से भिन्नजलाशय में हेतु (वह्नि) नहीं ही रहता ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

अत्र यद्यपि द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टसत्तायाः शुद्धसत्तायाश्चैक्यात् साध्यवदन्यस्मिन् गुणादाववृत्तित्वं नाऽस्ति, तथाऽपि हेतुतावच्छेदकरूपेणाऽवृत्तित्वं वाच्यम्, हेतुतावच्छेदकं यादृशवृत्तितानवच्छेदकमिति फलितोऽर्थः ॥ ६८ ॥

● प्रभा ●

द्रव्यत्व, समवायेन॰ साध्यतावच्छेदकेन सम्बन्धेन तद्वत् द्रव्यम्, तदन्यः गुणः, तत्र शुद्धसत्ता तिष्ठति चेत् तदभिन्ना विशिष्टसत्ता (प्रकृतहेतुः) अपि तिष्ठेदेवेति साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तित्वमेव हेतौ (विशिष्टसत्तायाम्) समायातं न वृत्तित्वा॰भाव इति चेदत्राह अत्र यद्यपीति ।

अयं हि साध्यतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नसाध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपको यो भेदः तादृशभेदाधिकरणनिरूपिता या वृत्तिता तादृशवृत्तितायाः अनवच्छेदकं यद् हेतुतावच्छेदकं तद्वत्त्वम् लक्षणम्। समन्वयश्च सद्धेतुस्थले पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ तादृशो भेदः संयोगेन वह्निमान् न इत्याकारकः, तदधिकरणम् जलादिः तन्निरूपिता वृत्तिता मीने नतु धूमे, तादृशवृत्तितावच्छेदकं मीनत्वम्, अनवच्छेदकम् धूमत्व, तदेव हेतुतावच्छेदकम्, तद्वत्त्वम् (धूमत्ववत्त्वम्) धूमे इति ।

असद्धेतुस्थले धूमवान् वह्नेरित्यादौ संयोगेन साध्यवान् (धूमवान्) महानसादिः, तदन्यो यथा ह्रदादिः तथैव तप्तायःपिण्डमपि, तन्निरूपिता वृत्तिता वह्नौ, वृत्तितावच्छेदकं वह्नित्वम्, तदेव हेतुतावच्छेदकमिति न लक्षणभ्रान्तिः। विशिष्टसत्ताहेतुकस्थले स्वप्रकृते च शुद्धसत्ताया विशिष्टसत्तायाश्च अभेदेऽपि सिद्धान्ते

● सरस्वती ●

यद्यपि 'द्रव्य गुण""इस स्थल में विशिष्टसत्ता तथा शुद्धसत्ता के एक होने से साध्यवान् से भिन्न गुण आदि में हेतु को अवृत्तित्व नहीं प्राप्त है तथापि लक्षण में अभावीयवृत्तिता का अनवच्छेदक जो हेतुतावच्छेदक तद्वत्त्व ऐसा निवेश करने से दोष का निवारण हो जायगा ॥६८॥

॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॥

ननु केवलान्वयिनि ज्ञेयत्वादौ साध्ये साध्यवदन्यस्याप्रसिद्धत्वादव्याप्तिः, किञ्च सत्तावान् जातेरित्यादौ साध्यवदन्यस्मिन् सामान्यादौ हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन समवायेन वृत्तेरप्रसिद्धत्वादव्याप्तिश्च,

• प्रभा •

धर्मयोः तद्वर्तिनोः सत्तात्वविशिष्टसत्तात्वयोः अभेदाभावेन (भिन्नत्वेन) निर्वाहः । तथाहि समवायेन साध्यवद्भिन्नो गुणः, तन्निरूपिता वृत्तिता गुणत्वे, वृत्तिताया अवच्छेदकं गुणत्वत्वम्, वृत्तिताया अनवच्छेदकं विशिष्टसत्तात्वम्, तदेव हेतुतावच्छेदकम्, तद्वत्त्वम् (विशिष्टसत्तात्ववत्त्वम्) विशिष्टसत्ताहेताविति समन्वये अव्याप्तिपरिहृतेः ॥६८॥

ननु तथापि इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यत्र सद्धेतौ स्यादव्याप्तिः, तथाहि साध्यम् वाच्यत्वम् (सप्तपदार्थवृत्ति) साध्यवन्तः सप्त पदार्थाः, साध्यवदन्यश्च न कश्चित् प्रसिद्ध इति लक्षणसमन्वयाभावात् । एवमेव सत्तावान् जातेरित्यत्र सत्तासाध्यकस्थले (सद्धेतौ) साध्यम् सत्ता, समवायेन साध्यतावच्छेदकेन सत्तावन्तः द्रव्यगुणकर्मपदार्थाः, तदन्यसामान्यादिपदार्थः, तन्निरूपिता हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्ना वृत्तितैव अप्रसिद्धा (सामान्यविशेषसमवायादिपदार्थेषु समवायसम्बन्धेन किमपि न तिष्ठति) इति साध्यवदन्यनिरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तित्वाप्रसिद्धया लक्षणागमनेन स्यादव्याप्तिरुक्तलक्षणस्येति चिन्तायाम् पूर्वपक्षःसमाप्ति

• सरस्वती •

प्रश्न—ज्ञेयत्व (सप्तपदार्थवृत्ति धर्म) आदि केवलान्वयिसाध्यक स्थल में साध्यवान् से भिन्न ही प्रसिद्ध नहीं, अतः लक्षण की अव्याप्ति होगी ।

और भी 'सत्तावान् जातेः' इस स्थल में साध्य (सत्ता) वान् से भिन्न सामान्य आदि पदार्थों में हेतुतावच्छेदक समवायसम्बन्ध से वृत्तित्व (रहना) ही अप्रसिद्ध है, लक्षण की अव्याप्ति हो जायगी ।

❀ कारिकावली ❀

अथ वा हेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगिना ।
साध्येन हेतोरैकाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते ॥ ६९ ॥

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

अत आह अथ वेति । हेतुमति निष्ठा = वृत्तिर्यस्य स तथा विरहः = अभावः, तथा च हेत्वधिकरणवृत्तिर्योऽभावस्तदप्रतियोगिना साध्येन सह हेतोः सामानाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते ।

* प्रभा *

लक्षण विहाय सिद्धान्तलक्षणीं व्याप्तिमुपस्थापयति अथवेति । अथवा, हेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगिना, साध्येन, हेतोः, ऐकाधिकरण्यम्, व्याप्तिः उच्यते इति । हेतुः अस्त्यस्मिन्निति हेतुमान् (हेत्वधिकरणम्) हेतुमति निष्ठा यस्य स हेतुमन्निष्ठः (हेत्वधिकरणवृत्तिः) स चासौ विरहश्च (अभाव) हेतुमन्निष्ठविरहः, तस्य अप्रतियोगि हेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगि साध्यम्, तेन हेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगिना (हेत्वधिकरणवृत्त्यभावाप्रतियोगिना) साध्येन सहैकाधिकरण्यम् (सामानाधिकरण्यम् एकाधिकरणवृत्तित्वमिति यावत्) व्याप्तिः । समन्वयश्च—पर्वतो वह्निमान् धूमादिति सद्धेतुस्थले हेतुः धूमः, हेतुमान् पर्वतादि, तन्निष्ठः = तद्वृत्तिः, यो विरहोऽभावः घटाभावादिः, तत्प्रतियोगी घटादिः, अप्रतियोगी साध्यो वह्निः, तेन सम धूमस्य हेतो. सामानाधिकरण्यम् पर्वताद्यवच्छेदेनेति ।

असद्धेतौ धूमवान् वह्नेरित्यादौ तु हेतु वह्नि, हेतुमान् यथा पर्वतादिः तथा अयोगोलकमपि, तद्वृत्तिरभावः धूमाभाव, अभावप्रतियोग्येव साध्यः, न अप्रतियोगीतिवारणम् ।

* सरस्वती *

उत्तर—पूर्वोक्त दोषों के कारण ही सिद्धान्तलक्षणव्याप्ति का आरम्भ किया जा रहा है । अर्थात् हेतु के अधिकरण में रहनेवाला जो अभाव, उसका अप्रतियोगी जो साध्य, उसके साथ एक अधिकरण में रहने को ही व्याप्ति कहते हैं ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

अत्र यद्यपि वह्निमान् धूमादित्यादौ हेत्वधिकरणपर्वतादिवृत्त्यभावप्रतियोगित्वं तत्तद्वह्न्यादेरस्तीत्यव्याप्तिः।

• प्रभा •

द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यत्र च हेतुः विशिष्टसत्ता, हेतुमत् द्रव्यम्, तद्वृत्तिरभावो योऽपि कोऽपि, तत्प्रतियोगी अन्यः, अप्रतियोगि साध्यं द्रव्यत्वम्, तेन सम हेतोः विशिष्टसत्तायाः सामानाधिकरण्येन सत्ता निर्वाहः।

केवलान्वयिस्थले तु हेतुः ज्ञेयत्वम्, हेतुमत् (ज्ञेयत्ववत्) ज्ञेयमात्रम्, तत्र अभावः (स्वाधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावादिः) योऽपि कोऽपि, तत्प्रतियोगी गवेषणा कथम्, अप्रतियोगि साध्यम् वाच्यत्वम्, तेन सम हेतोः ज्ञेयत्वस्य सामानाधिकरण्य समस्तु पदार्थेषु प्रसक्तमिति।

सत्तावान् 'जातेरित्यत्र च' हेतुः जातिः, हेतुमन्ति द्रव्यगुणकर्माणि, तद्वृत्तिः अभावः तत्तदभाव, तत्प्रतियोगी स सः, अप्रतियोगि साध्यं सत्ता, तथा सामानाधिकरण्य जातिहेतोः पदार्थत्रये इति भवत्यव्याप्तिनिरासः।

नन्वेवमपि 'वह्निमान् धूमात्' इत्यादौ अव्याप्तिः, तथाहि हेतुः धूमः, हेतुमान् पर्वतः, तद्वृत्तिरभावः महानसीयवह्निर्नास्ति इति महानसीयवह्निप्रतियोगिकः, हेतुमत् महानसम्, तद्वृत्तिरभावः पर्वतीयवह्निर्नास्ति इति पर्वतीयवह्निप्रतियोगिकः, एव रूपेण चालनीन्यायेन कश्चिदपि वह्निः साध्यः अप्रतियोगी नायाति, सर्वे एव वह्नयः प्रतियोगिनो जाताः इति समाशंकते अत्रेति।

• सरस्वती •

प्रश्न—'वह्निमान् धूमात्' इत्यादि में ही यह लक्षण नहीं जायगा क्योंकि साध्यपद से तत्तद् (महानसीय-चत्वरीय पर्वतीय) वह्नि होंगे, उन सबका अभाव तत्तत्पर्वतादि में (पर्वत में महानसीय वह्नि का, महानस में चत्वरीय वह्नि का) मिल जायगा, सभी वह्नि (साध्य) अभाव के प्रतियोगी ही हो जायँगे, अप्रतियोगी साध्य कौन सा मिलेगा? अव्याप्तिदोष अनिवार्य हो जायगा।

२

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

न च समानाधिकरणवह्निधूमयोरेव व्याप्तिरिति वाच्यम्, तत्तद्वह्न्यादेरप्युभयाभावसत्त्वात्, एकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्तीति प्रतीतेः। गुणवान्

● प्रभा ●

न च एकाधिकरणवृत्तिवह्निधूमयोरेव तल्लक्षणमिति पर्वतीयवह्निपर्वतीयधूमयोर्नाव्याप्तिसम्भव इति वाच्यम्, घटसत्त्वेऽपि घटपटौ न स्तः इतिवत् एकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्तीति प्रतीतेः सर्वजनसिद्धत्वेन धूमवति पर्वते पर्वतीयवह्न्यभावस्याभावेऽपि पर्वतीयवह्निघटोभयं नास्ति इत्यभावस्य मानेन अभावप्रतियोगिकुक्षौ पर्वतीयवह्नेरपि समागतत्वेन अप्रतियोगित्वविरहाद्व्याप्तेः सुस्थिरत्वात्।

ननु महानसीयवह्निर्नास्तीत्यादयो विशेषाभावा एव विशिष्टाभावाः कथ्यन्ते, विशिष्टस्य भावः वैशिष्ट्यम्, एवं च वैशिष्ट्यधर्मानवच्छिन्नत्वम् निवेश्यते। तथा च तत्तद्विशिष्टाभावाः वैशिष्ट्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकतया न ग्रहीष्यन्ते।

एवम् व्याप्यवृत्तित्वम्-एकत्वानवच्छिन्नानुयोगिताकपर्याप्तिप्रतियोगित्वम् अर्थात् द्वित्व त्रित्व-उभयत्वादिधर्मः व्याप्यवृत्तिधर्मः, तद्धर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमभावस्य विवक्ष्यते।

उभयाभावमादाय दोषो दीयते, स च प्रतियोगितायां वैशिष्ट्यव्याप्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नत्वनिवेशात् वारयितुं शक्यः, यतोहि पर्वतीयवह्निघटोभयं नास्तीत्यभावीया पर्वतीयवह्निघटोभयनिष्ठा प्रतियोगिता उभयत्वावच्छिन्ना, स च धर्मः व्याप्यवृत्तिः इति तादृशाभावो न ग्रहीष्यते, अपितु घटाभावादिः तद्प्रतियोगित्वं साध्यस्य स्फुटम् इत्यत आह गुणवानिति। अयम् भावः, तत्रीत्या उभयाभावस्य

● सरस्वती ●

यदि कहिये कि समानाधिकरण (समान-एक अधिकरण में रहनेवाले) वह्नि तथा धूम की ही व्याप्ति मानी जाय तो पूर्वोक्त दोष का वारण हो जायगा, ऐसा भी नहीं कह सकते। क्योंकि इस प्रकार विशिष्टाभाव (विशेषाभाव) का वारण हो जाने पर भी तत्तद्वह्नि-घट इन दोनों (उभया) का अभाव मिल जायगा, 'एक के रहते भी दोनों नहीं हैं' यह सिद्धान्त व्यवहारसिद्ध है। साथ

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिश्च ।

तथाऽपि प्रतियोगितानवच्छेदकं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्न-सामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति वाच्यम् ।

ननु रूपत्वव्याप्यजातिमत्त्वात् पृथिवीत्वादित्यादौ साध्यतावच्छेदिका रूपत्वव्याप्यजातयः, तासां च शुक्लत्वादिस्वरूपाणां नीलघटादिवृत्त्यभाव-प्रतियोगितावच्छेदकत्वमस्तीत्यव्याप्तिरिति चेन्न,

• प्रभा •

यत्तु 'महाकाश्यत्वेन पर्वतो वह्निमान्' इत्यादौ कारणेऽपि च 'गुणवान् द्रव्यत्वात्' अत्र द्रव्यत्वं हेतुः, तच्च जातिरित्येकमेव न भिन्नं भिन्नम्, द्रव्यत्ववत् द्रव्यं तत्तदिति, द्रव्यत्वाधिकरणं द्रव्यं जलम्, तत्र गन्धो गुणो नास्ति, द्रव्यत्वाधिकरणं वायुः, तत्र रूपगुणो नास्ति, द्रव्यत्वाधिकरणम् पृथ्वी, तत्र स्नेहो नास्ति इति रीत्या चालनीन्यायेन सर्वोऽपि गुणः साध्याभावप्रतियोग्येव जातः इति भवेदव्याप्तिः। द्रव्यत्वस्य हेतौ जगति एकमात्रस्य सत्त्वेन 'समानाधिकरणोऽप्यसि' इतिरीत्यापत्तिः निर्णीतो न भवितुमर्हेत्। इत्यत आह तथापीति। अयमाशयः, हेत्वधिकरणवृत्तिर्योऽभावः तदीया या प्रतियोगिता तदनवच्छेदकं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसाध्य-सामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति लक्षणं कार्यम्। समन्वयश्च पर्वतो वह्निमानित्यादौ हेतुर्धूमः, तदधिकरणम् पर्वतादि, तद्वृत्तिरभावो घटाभावः, तत्प्रतियोगिता घटे, प्रतियोगितावच्छेदकं घटत्वम्, प्रतियोगितानवच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं वह्नित्वम्,

• सरस्वती •

ही गुणवान् द्रव्यत्वात् में अव्याप्ति भी हो जायगी।

उत्तर—अभावप्रतियोगिता का अनवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक तदव-च्छिन्नसामानाधिकरण्य को ही व्याप्ति बनायेंगे, किसी प्रकार का दोष न होगा।

प्रश्न—'रूपत्वव्याप्य' इस सद्धेतुस्थल में साध्यतावच्छेदक होंगी रूपत्वव्याप्य जातियाँ, सभी चालनीन्याय से नीलघट आदि में रहनेवाले तत्तद्अभाव की प्रतियोगितावच्छेदिका ही हो जायँगी, इस प्रकार अव्याप्तिदोष आ जायगा।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

यत्र परम्परया रूपत्वव्याप्यजातित्वस्यैव साध्यतावच्छेदकत्वात्,

• प्रभा •

तदवच्छिन्नः साध्यो वह्निः, तत्सामानाधिकरण्यं धूमस्येति। धूमवान् वह्नेरित्यत्र तु हेतुः वह्निः, तदधिकरणम् पर्वतादिवत् तप्तायःपिण्डमपि, तद्वृत्तिरभावः धूमाभावः, तत्प्रतियोगिता धूमनिष्ठा, प्रतियोगितावच्छेदकं धूमत्वम्, तदेव साध्यतावच्छेदकमिति न लक्षणक्रान्तिः। गुणवान् द्रव्यत्वादित्यत्र च हेतुः द्रव्यत्वम् तदधिकरणम् तत्तत्क्षणादिद्रव्यं गृह्यताम्, तत्र रूपं नास्ति रसो नास्ति गन्धो नास्तीत्येवमादयोऽभावाः वर्तन्ताम्, तत्तदभावप्रतियोगिता तत्तद्रूपरसादिगुणे प्रतियोगितावच्छेदकं तत्तद्रूपत्वरसत्वादि, अनवच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं गुणत्वम्, तदवच्छिन्नो गुणः, तत्सामानाधिकरण्यं द्रव्यत्वस्येति भवेद् दोषाभावः।

नन्वेवमपि घटः रूपत्वव्याप्यजातिमत्वात् पृथिवीत्वात् रूपत्वव्याप्यजातिमत्वं रूपत्वव्याप्यजातिः साध्या, पृथिवीत्वं हेतुः, इति सद्धेतौ स्यादव्याप्तिः, तथाहि-रूपत्वस्य व्याप्या जातयः शुक्लत्व-नीलत्व-पीतत्व-हरितत्व-रक्तत्व-कपिशत्व-चित्रत्वानि, हेतुः पृथिवीत्वम्, तदधिकरणं यदि नीलो घटो गृह्यते तदा तत्र शुक्लो नास्ति इत्यभावः, यदि शुक्लो घटो गृह्यते तदा तत्र नीलो नास्ति इत्यभावः, यदि हरितस्तदा तत्र पीतो नास्तीत्यभावः एवम् चाक्षुषत्वेन सर्वाभावलाभे शुक्लाभावप्रतियोगितावच्छेदकं शुक्लत्वम्, पीताभावप्रतियोगितावच्छेदकम् पीतत्वम्, नीलाभावप्रतियोगितावच्छेदकं नीलत्वम्, हरिताभावप्रतियोगितावच्छेदकम् हरितत्वम् इति रीत्या रूपत्वव्याप्याः सर्व अपि शुक्लत्वनीलत्वादिजातयः प्रतियोगितावच्छेदिका एव जाताः, ता एव च साध्यतावच्छेदिकाः इति प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकाभावेन अव्याप्तिः इति शङ्कायामाह यत्रेति। अयम्भावः, महतो इष्टानुरोधेन अन्या व्यवस्था, साधारणतः साध्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन रूपत्वव्याप्यजातिमान् साध्यः, साध्यता रूपत्वव्याप्यजातिनिष्ठा, साध्यतावच्छेदकम्

• सरस्वती •

उत्तर—व्याप्यव्यापकभावपरम्परासम्बन्ध से दृष्टान्तक में रूपत्वव्याप्य-

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

न हि तादृशधर्मावच्छिन्नाभावः क्वापि पृथिव्यामस्ति, रूपत्वव्याप्यजातिमान्नास्तीति बुद्ध्यापत्तेः ।

एवं दण्डादौ साध्ये परम्परासम्बद्धं दण्डत्वादिकमेव साध्यतावच्छेदकं तच्च प्रतियोगितानवच्छेदकमिति ।

• प्रभा •

रूपत्वव्याप्यजातिमत्त्वम्, तच्च प्रकृतिकत्वयोर्घटयोः प्रकारीभूतो भाव इति रीत्या रूपत्वव्याप्यजातिमात्रम् प्राप्नोति । वस्तुतः रूपत्वव्याप्यजातित्वम् साध्यतावच्छेदकम् मान्यम्, परम्परारूपस्वाश्रयसमवायसम्बन्धेन । स्वम् रूपत्वव्याप्यजातित्वं तदाश्रयः रूपत्वव्याप्यजातिः, तत्समवायो रूपमात्रे । एवं च पूर्वोक्तरीत्या तत्तद्नीलत्वादि जातीनां प्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि न हानिः तथाहि प्रतियोगितावच्छेदिका भवन्तु नाम नीलत्वादयो जातयः, परन्तु साध्यतावच्छेदकं रूपत्वव्याप्यजातित्वम् तच्च-प्रतियोगितानवच्छेदकमेव, तदवच्छिन्ना स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेन रूपत्वव्याप्यजातिमत्ता, तदभावाधिकरणम् पृथिवीत्वस्य हेतोः स्यादिति न दोषः । तदेव स्पष्टयति नहीति । पृथिवीमात्रे (क्वापि घटादौ) रूपत्वव्याप्यजातिमान् नास्तीति बुद्धिर्न भवति ।

परम्परया साध्यतावच्छेदकप्रसङ्गादाह स्थलान्तरमपि एवमिति । 'मठो दण्डिमान् दण्डिसंयोगात्' इत्यत्र मठः पक्षः, दण्डिमत्त्वं साध्यम्, दण्डिसंयोगः हेतुः, साध्यतावच्छेदको दण्डः, अत्र दण्डिसंयोगस्य हेतोरधिकरणम् मठः, तद्वृत्त्यभावः तद्दण्डी नास्ति, तद्दण्डी नास्ति इति चालनीन्यायेन तत्तद्दण्ड्यभावाः, तत्तदभावीया प्रतियोगिता तत्तद्दण्डिनिष्ठा, अभावप्रतियोगितावच्छेदकः तत्तद्दण्डः इति, ॥ एवं

• सरस्वती •

जातित्व ही साध्यतावच्छेदक माना जायगा, न कि तत्तत् शुक्लत्व आदि जातियाँ । किसी भी पृथ्वी में 'रूपत्वव्याप्यजातिमान् नहीं है' ऐसी प्रतीति नहीं होती ।

इसी प्रकार 'दण्डिमान् दण्डिसंयोगात्' इत्यादि स्थल में भी परम्परासम्बन्ध से दण्डत्व आदि ही साध्यतावच्छेदक होते हैं, वे प्रतियोगितानवच्छेदक भी ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

साध्यादिभेदेन व्याप्तेर्भेदात् तादृशस्थले साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकं प्रतियोगितावच्छेदकतानवच्छेदकमित्येव लक्षणघटकमित्यपि वदन्ति ।

• प्रभा •

च साध्यतावच्छेदक इति स्याद्व्याप्तिः । परन्तु पूर्वोक्तरीत्या स्वाश्रयाश्रयत्वरूप-परम्परासम्बन्धेन दण्डत्वं साध्यतावच्छेदकम् । तथा च तत्तद्दण्डो भवेन्नाम प्रतियोगितावच्छेदकः प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदक दण्डत्वम् स्वाश्रयाश्रयत्व-सम्बन्धेन तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिलक्षणसमन्वयेऽदोषात् । दण्डिसंयोगाश्रये क्वापि मठे स्वाश्रयाश्रयत्वरूपपरम्परासम्बन्धेन दण्डत्वस्याभावस्यास्तीति प्रत्ययो न भवति कदापीति हृदयम् ।

ननु परम्परासम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकत्वव्यवस्थापिका पद्धतिः कुतो नीयत इति चेन्न ? 'साध्यसाधनभेदेन व्याप्तिभेद' इति सिद्धान्तात् तादृशस्थले व्याप्ति-लक्षणस्य भिन्नस्य स्वीकारात् । तथा च तत्र हेत्वधिकरणवृत्त्यभाव प्रतियोगिता-वच्छेदकतानवच्छेदक यत् साध्यतावच्छेदकतावच्छेदक तदाश्रयावच्छिन्नसामानाधि-करण्य हेतोर्व्याप्तिरिति । तदाह साध्यादिभेदेनेति ।

ननु घटो द्रव्य गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वात् इति स्थले शुद्धविशिष्टसत्तयोर भेदेन शुद्धसत्ताऽभिन्नविशिष्टसत्ताहेतोरधिकरण गुण, तद्वृत्तिरभाव' द्रव्यत्व, नास्तीति, प्रतियोगिता द्रव्यत्वनिष्ठा, प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्वत्वम्, तदेव साध्यतावच्छेदकमिति कथ लक्षणसमन्वय इति चेन्न ? हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेत्व-धिकरणवृत्त्यभावेत्यादिलक्षणकरणाददोषात् । तथाहि—हेतु गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट-सत्ता, हेतुता तादृशसत्तानिष्ठा, हेतुतावच्छेदकं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तात्वम्, तद्विशिष्टा गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता, तदधिकरण द्रव्यम्, तद्वृत्तिरभाव' घटा-

• सरस्वती •

साध्य, साधन के भेद से व्याप्ति भी भिन्न भिन्न होती है इस सिद्धान्त से साध्य-तावच्छेदकता का अवच्छेदक जो वह प्रतियोगितावच्छेदकता का अनवच्छेदक हो ऐसा ही लक्षण बना देना चाहिये, यह किसी का मत है ।

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॐ

हेत्वधिकरणं हेतुतावच्छेदकविशिष्टाधिकरणं वाच्यम्, तेन द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ शुद्धसत्ताधिकरणगुणादिनिष्ठाभावप्रतियोगित्वेऽपि द्रव्यत्वस्य नाऽव्याप्तिः ।

एवं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणं बोध्यम्, तेन समवायेन

• प्रभा •

भावादिर्यः कश्चिदपि, तदप्रतियोगि साध्यम् द्रव्यत्वम्, हेतुना तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यसत्त्वेन लक्षणसमन्वयात् ।

न च तथापि हेतुतावच्छेदक विशिष्टसत्ताया, तद्विशिष्टा गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता, सा च शुद्धसत्तानतिरिक्ता, इति पुनः पूर्वदोषः सुस्थ इति वाच्यम्, हेतुतावच्छेदकविशिष्टपदेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वविशिष्ट यद् हेत्वधिकरणमिति विवक्षया निर्वाहात् । तथाहि—विशिष्टशुद्धसत्तयोरैक्येऽपि हेतुतावच्छेदक गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताय, तदवच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणता भिन्ना, सा च द्रव्य एव—न गुणकर्मणोः, शुद्धसत्तात्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणता भिन्ना, सा च द्रव्यगुणकर्मसु समाना । इति विशिष्टसत्ताधिकरणत्व हेतुतावच्छेदकविशिष्टत्वेन कदापि न गुणकर्मणोः, किन्तु द्रव्य एवेति नाव्याप्तिः । तदाह हेत्वधिकरणमिति ।

नन्वेमपि 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' इत्यत्राव्याप्तिः, तथाहि हेतुः धूमः, तदधिकरण समवायसम्बन्धेन धूमावयवाः, तद्वृत्तिर्योऽभावः स वह्न्यभावः, तत्प्रतियोगी वह्निः साध्य इति चेत्तत्राह एवमिति । तथा च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणवृत्त्यभावेत्यादिलक्षणम् । अत्र च हेतुतावच्छेदकः सम्बन्धः संयोग,

• सरस्वती •

हेतु का अधिकरण हेतुतावच्छेदकविशिष्ट का अधिकरण होना चाहिये । अतः द्रव्यत्वसाध्यकविशिष्टसत्ताहेतुकस्थल में शुद्धसत्ता के अधिकरण गुण आदि में रहनेवाले अभाव का प्रतियोगी होने पर भी अव्याप्ति न हुई ।

हेतु का अधिकरण भी हेतुतावच्छेदकसम्बन्ध से लिया जायगा । अतः

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

'धूमाधिकरणतदवयववनिष्ठाभावप्रतियोगित्वेऽपि वह्नेर्नाऽव्याप्तिः ।

अभावश्च प्रतियोगिव्यधिकरणो बोध्यः । तेन कपिसंयोग्येतद्वृक्ष-त्वादित्यादावेतद्वृक्षवृत्तिकपिसंयोगाभावप्रतियोगित्वेऽपि कपिसंयोगस्य नाऽव्याप्तिः ।

• प्रभा •

तेन सम्बन्धेन धूमत्वावच्छिन्नाधिकरणम् पर्वतादिः (न धूमावयवः) तद्वृत्तिरभावो घटाभावादिरिति समन्वयेन दोषाभावः ।

ननु तथापि वृक्षः कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात् इति सद्धेतुस्थले कपिसंयोगः साध्यः, तत्र शाखायां कपिसंयोगः, मूले कपिसंयोगाभावः इति स्थितिः । हेतुः एतद्वृक्षत्वम्, 'तदधिकरणं वृक्षः, तद्वृत्तिरभावः मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभावः, तत्प्रतियोगी कपिसंयोगः' प्रतियोगितावच्छेदकं कपिसंयोगत्वम्, तदेव तु साध्यतावच्छेदकम् इति भवेदव्याप्तिरिति चेदत आह अभावश्चेति । तथा च अभावः प्रतियोगिव्यधिकरणो ग्राह्यः । प्रकृते यः कपिसंयोगाभावो धृतः स न प्रतियोगिव्यधिकरणः, यतो हि वृक्षः अभावप्रतियोगिनः कपिसंयोगस्याधिकरणं शाखावच्छेदेन, कपिसंयोगाभावस्याधिकरणं मूलावच्छेदेनेति अभावोऽयम् प्रतियोगिसमानाधिकरणो न तु प्रतियोगिव्यधिकरणः, किन्तु घटाभावादिस्तादृशो ग्राह्य इति दोषवारणसम्भवात् ।

ननु एवमपि किनाम अभावे प्रतियोगिव्यधिकरणत्वम् ? यदि प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वम् तदा पुनस्तत्रैवाव्याप्तिः, तथाहि हेत्वधिकरणम् एतद्वृक्षः,

• सरस्वती •

समवायसम्बन्ध से धूम के अधिकरण धूमावयव में रहनेवाले अभाव का प्रतियोगी होने पर भी वह्नि के अव्याप्ति न हुई ।

अभाव भी प्रतियोगिव्यधिकरण लेना चाहिये । अतः कपिसंयोगी""इस सद्धेतुस्थल में एतद्वृक्षवृत्तिकपिसंयोगाभाव का प्रतियोगी होने पर भी कपिसंयोग के अव्याप्तिदोष नहीं आया ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

[redacted] च प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं यदि प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वम्, तदा तथैवाऽव्याप्तिः, प्रतियोगिनः कपिसंयोगस्याऽनधिकरणे गुणादौ वर्तमानो योऽभावस्तस्यैव वृक्षे मूलावच्छेदेन सत्त्वात्। यदि तु प्रतियोग्यधिकरणावृत्तित्वं, तदा संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः—सत्ताधिकरणे गुणादौ य संयोगाभावस्तस्य प्रतियोग्यधिकरणद्रव्यवृत्तित्वादिति वाच्यम्,

• प्रभा •

तद्वृत्तिः यः अभावः कपिसंयोगाभावः, स प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तिरस्ति, यतोहि प्रतियोगी कपिसंयोगः, तदनधिकरणं गुणः (गुणे गुणो न तिष्ठति इति न्यायदायसिद्धान्तात्) स एव गुणवृत्तिकपिसंयोगाभावो वृक्षे मूले लभ्यते इति प्रतियोगिव्यधिकरणत्वस्याभावे अव्याप्तिः सुस्थिरेति शङ्कायामाह यदि त्विति। अयम्भावः, प्रतियोगिव्यधिकरणत्वम् प्रतियोग्यधिकरणावृत्तित्वम्। तथा चात्र गुणवृत्तिकपिसंयोगाभावः स्वप्रतियोगिन (कपिसंयोगस्य) अधिकरणे मूलावच्छेदेन वर्तमान इति न स प्रतियोगिव्यधिकरणः प्रतियोग्यधिकरणावृत्तिरिति भवेद् दोषपरिहार।

नचैवम् तुल्ययुक्त्या संयोगी सत्त्वादिति असद्धेतुस्थले संयोगाभावकसत्ताद्गुणे

• सरस्वती •

प्रतियोगिव्यधिकरणत्व [redacted] अर्थ विकल्पों के द्वारा प्रश्न करके [redacted] रहे हैं।

१—यदि प्रतियोगी के अनधिकरण में वृत्तित्व ही यह हो तो पुनः अव्याप्ति लगी रह जायगी। क्योंकि अभाव का प्रतियोगी जो कपिसंयोग उसके अनधिकरण गुण में रहनेवाला जो अभाव (कपिसंयोगाभाव) वही मूल में वृक्ष में बैठा है।

२—यदि प्रतियोगी के अधिकरण में अवृत्ति अभाव ऐसा अर्थ करें तो पूर्वदोष का निवारण होने पर भी तुल्ययुक्त्या 'संयोगी सत्त्वात्' यहाँ पर अतिव्याप्ति हो जायगी। क्योंकि सत्ता के अधिकरण गुण आदि में जो संयोगाभाव यह प्रतियोगी (संयोग) के अधिकरण द्रव्य में भी वृत्ति (रहनेवाला) है। अतः यहाँ पर साध्याभाव नहीं पकड़ा जायगा। अभावान्तर लेकर अतिव्याप्ति बन जायगी।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

हेत्वधिकरणे प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्य विवक्षितत्वात्, स्वप्रतियोग्यनधिकरणीभूतहेत्वधिकरणवृत्त्यभाव इति निष्कर्षः ।

प्रतियोग्यनधिकरणत्वं च प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं

• प्रभा •

अतिव्याप्तिः स्यात्, तथाहि—हेतुः सत्ता, तदधिकरणम् द्रव्यं गुणः कर्म च, तत्र गुणे च संयोगाभावः स स्वप्रतियोगिना संयोगस्याधिकरणे मूलावच्छेदेन वृक्षद्रव्ये वर्तते इति न प्रतियोग्यधिकरणावृत्तिः प्रतियोगिव्यधिकरण इति न म्रियेत, म्रियेत च कश्चिदन्याभावः, इति प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकैः स्यादित्यलक्षणकान्तिप्रसङ्गात् इति वाच्यम्, हेत्वधिकरणावच्छेदेन प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्य विवक्षणात् । निष्कर्षमाह स्वप्रतियोग्यनधिकरणीति । अर्थात् स्वप्रतियोग्यनधिकरणीभूत यद् हेत्वधिकरणं तद्वृत्त्यभावः प्रतियोगिव्यधिकरणो नाम । हेत्वधिकरणावच्छेदेन स्वप्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वेन । तथा च कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यत्र गुणस्य हेत्वधिकरणत्वाभावेन कपिसंयोगाभावो न हेत्वधिकरणावच्छेदेन स्वप्रतियोग्यनधिकरणवृत्तिरिति न स गृह्यत इति नाव्याप्तिः । असद्धेतौ संयोगी सत्त्वादित्यत्र तु संयोगाभावो गृह्यते, "गुणस्य हेत्वधिकरणत्वात् हेत्वधिकरणावच्छेदेन प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वरूपप्रतियोगिव्यधिकरणत्वसत्त्वात्, एवं च नातिव्याप्तिरपीति ।

ननु एवमपि विशिष्टसत्तावान् जातेरित्यसद्धेतौ विशिष्टसत्तासाध्यके जातिहेतुके जात्यधिकरणे गुणे साध्याभावस्य विशिष्टसत्ताभावस्य ग्रहणं स्यात्, विशिष्टशुद्धसत्तयोरभेदेन सत्तारूपप्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात् प्रतियोगिव्यधिकरणत्वाभावस्येति शङ्कायामाह प्रतियोग्यनधिकरणत्वं चेति । तथा च प्रतियोगितावच्छे-

• सरस्वती •

समाधान—हेत्वधिकरण में प्रतियोगी के अनधिकरणवृत्तित्वविशिष्ट जो अभाव ऐसा अर्थ कर देंगे । स्वप्रतियोगी का अनधिकरणीभूत जो हेत्वधिकरण उसमें रहनेवाला जो अभाव यह स्पष्टार्थ होगा ।

प्रतियोग्यनधिकरण भी प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न का अनधिकरण कहना

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

वाच्यम्, तेन विशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ जात्यधिकरणगुणादौ विशिष्टसत्ताभावस्य प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वेऽपि न क्षतिः।

अत्र साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणत्वं बोध्यम्, तेन

• प्रभा •

दकावच्छिन्नानधिकरणत्वम् प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणताशून्यत्वम्। प्रकृतेऽसद्धेतुस्थले च विशिष्टसत्ताभावो गृह्यते, यतो हि विशिष्टशुद्धसत्तयोरैक्येऽपि सत्तात्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणता भिन्ना विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणता भिन्नेति सिद्धान्तरीत्या विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणता न गुणे, इति गुणे विशिष्टसत्ताभावः प्रतियोगिव्यधिकरण इति तद्ग्रहणेनातिव्याप्तिनिरासस्सम्भवात्। एतावत्पर्यन्तग्रन्थार्थेन सम्पन्नं लक्षणन्तु स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणताशून्यो हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणतावान् यः तन्निष्ठो योऽभावः तत्प्रतियोगितानवच्छेदकं यत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसाध्यसामानाधिकरण्यं हेतोर्व्याप्तिरिति।

अथ ज्ञानवान् सत्त्वादिति समवायेन ज्ञानसाध्यके सत्ताहेतुकव्यभिचारिस्थलेऽसद्धेतौ हेतोः सत्तायाः अधिकरणं घटादि, तन्निष्ठोऽभावो न ज्ञानाभावः (ज्ञानं विषयतासम्बन्धेन घटवृत्ति) इति अस्य विषयतासम्बन्धेन ज्ञानरूपप्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात् प्रतियोगिव्यधिकरणत्वाभावात्[1] अतोऽभावान्तरं ग्राह्यम् इति भवेदव्याप्तिरिति शङ्कायां समाधानमाह अत्रेति। अर्थात् साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिव्यधिकरणत्वग्रहणे विषयतासम्बन्धेन ज्ञानं घटे वर्त्तताम् न कापि हानिः, समवायेन ज्ञानं तत्र (घटे) नास्तीति ज्ञानाभावः प्रतियोगिव्यधिकरणः सुगमः

• सरस्वती •

होगा। जिससे 'विशिष्टसत्तावान् जाते.' यहाँ पर जाति के अधिकरण गुण आदि में विशिष्टसत्ताभाव के प्रतियोगिसमानाधिकरण होने पर भी अतिव्याप्ति न हुई।

यहाँ साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से प्रतियोग्यनधिकरणत्व विवक्षित है। अतः

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

ज्ञानवान् सत्त्वादित्यादौ सत्ताधिकरणघटादेर्विषयतया ज्ञानाधिकरणत्वेऽपि न क्षतिः। इत्थं च वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमाधिकरणे समवायेन वह्निविरहसत्त्वेऽपि न क्षतिः।

ननु प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्य कस्यचित्प्रतियोगिनोऽनधिकरणत्वं ? तत्सामान्यस्य वा ? यत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं वा ? विवक्षितम्।

• प्रभा •

तथा चातिव्याप्तिपरिहारस्सुकरः।

साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणत्वनिवेशात् प्राक् पर्वतो वह्निमान् धूमादिति सद्धेतावपि प्रागव्याप्ति वारयति इत्थं चेति। धूमाधिकरणे पर्वते समवायेन वह्न्यभावो न प्रतियोग्यनधिकरणः, प्रतियोगिनो वह्नेः संयोगेन पर्वतवृत्तित्वादिति घटाभावादिकं तादृशमादाय लक्षणसमन्वये बाधकाभावात्।

ननु जातिहेतुके विशिष्टसत्तासाध्यके व्यभिचारिणि अतिव्याप्तिनिरासाय प्रतियोग्यनधिकरणत्वस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वरूपोऽर्थोऽङ्गीकृतः। तत्र जिज्ञास्यते ननु इति। तत्सामान्यस्य = प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसा-

• सरस्वती •

'ज्ञानवान् सत्त्वात्' इस असद्धेतुस्थल में सत्ता का अधिकरण जो घट आदि, विषयतासम्बन्ध से उसके ज्ञानाधिकरण होने पर भी अतिव्याप्ति न हुई।

इस निवेश से यह भी लाभ हुआ कि 'वह्निमान् धूमात्' इस सद्धेतुस्थल में धूम के अधिकरण में समवायसम्बन्ध से वह्नि का अभाव मिलने पर भी अव्याप्ति न होगी।

प्रश्न—१ प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न जिस किसी प्रतियोगी का अनधिकरण २ प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्य का अनधिकरण ३ यत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न का अनधिकरण, क्या अभीष्ट है ?

ॐ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॐ

आद्ये कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादौ तथैवाव्याप्तिः— कपिसंयोगाभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नो वृक्षावृत्तिकपिसंयोगोऽपि भवति तदनधिकरणं वृक्ष इति।

• प्रभा •

मान्यस्य। पक्षत्रयमुक्त्वा यथाक्रमं दूषयति आद्य इति। प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्य कस्यचित्प्रतियोगिनोऽनधिकरणत्वविवक्षणे कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादौ सद्धेतौ कपिसंयोगाभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नो वृक्षावृत्तिकपिसंयोगोऽपि, तदनधिकरणं वृक्ष इति प्रतियोग्यनधिकरणत्वेन कपिसंयोगाभावस्य ग्रहणे अव्याप्तिदोषस्य महापातात्।

प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यस्यानधिकरणत्वविवक्षणे प्रतियोग्यनधिकरणाभावाप्रसिद्ध्या सद्धेतुमात्रे लक्षणसमन्वयाभावेन असम्भवप्रसङ्गात्। तथाहि— सद्धेतौ पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यत्र हेतुर्धूमः, तदधिकरणम् पर्वतः, तद्वृत्तिरभावः पूर्वं घटाभावोऽभिमतः, स नेदानीं सम्भवति, यतो हि स स्वप्रतियोगिसमानाधिकरणः, कथमिति चेच्छृणु योऽयं घटाभावः पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टः पर्वते तस्यैव घटाभावस्य उत्तरक्षणे अभावोऽपि, इति उत्तरक्षणावच्छेदेन पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टघटाभावाभावः (विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते इति रीत्या शुद्धघटाभावः विशिष्टघटाभावस्वरूपः)। इति यथा घटाभावस्य प्रतियोगी घटः तथा घटाभावस्य घटाभावाभावस्वरूपतया तत्प्रतियोगी घटाभावाभावो द्वितीयाभावश्च, इति घटरूपप्रतियोगिनोऽभावेऽपि पर्वते पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टघटाभावाभावरूपप्रतियोगिसत्त्वेन घटाभावस्य प्रतियोग्यनधिकरणत्वाभावात्। एवं रीत्या सर्वस्यापि अभावस्य प्रतियोग्यनधिकरणता नैव स्यादिति स्यादसम्भवः।

• सरस्वती •

पहला मानने पर कपिसंयोगी "इस सद्धेतुस्थल में अव्याप्ति बनी ही रह जायगी क्योंकि कपिसंयोगाभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न वृक्ष में अवृत्ति कपिसंयोग भी होगा, उसका अनधिकरण वृक्ष होगा ही, साध्याभाव पकड़ लिया जायगा।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

द्वितीये तु प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धिः–सर्वस्यैवाभावस्य पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात् । ननु वह्निमान् धूमादित्यादौ घटाभावादेः पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोग्यधिकरणत्वं यद्यपि पर्वतादेः, तथापि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन तत्प्रतियोग्यनधिकरणत्वमस्त्येवेति कथं प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धिः

● प्रभा ●

ननु साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणत्वविशेषणस्यानुपदमुक्तत्वात् पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टघटाभावाभावरूपप्रतियोगिनः स्वरूपसम्बन्धेन पर्वते सत्वेऽपि साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धेन तथात्वाभावात् घटाभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं सुघटम् एव नासम्भव इति चेत्, अभावाधिकरणकोऽभावोऽधिकरणस्वरूप इति केषांचित् सिद्धान्तेन घटाभावे यो वह्न्यभावः सोऽधिकरणस्वरूपः अर्थात् घटाभावस्वरूप इति, यथा तस्य घटः प्रतियोगी तथा वह्निरपि, तदधिकरणं च पर्वत इति नासौ घटाभावः प्रतियोगिव्यधिकरणो भवितुमर्हेत्, एवमेवान्येऽप्यभावा इति भवेदसम्भवापात इति तात्पर्यात् ।

नचाभावनिष्ठोऽभावो नाभावस्वरूपः किन्तु भिन्न एवेति मते नोक्तरीत्या प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धिरिति वाच्यम्, तथा सति धूमाभाववान् वह्न्यभावादिति सद्धेतौ स्वरूपसम्बन्धेन धूमाभावसाध्यके वह्न्यभावहेतुके चाव्याप्ति

● सरस्वती ●

२—दूसरे में प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव ही अप्रसिद्ध हो जायगा, क्योंकि सभी अभाव पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोगी के समानाधिकरण होते हैं ।

प्रश्न—यद्यपि 'वह्निमान् धूमात्' इत्यादि में पकड़ा जानेवाला जो घटाभाव वह पर्वत में प्रतियोगिव्यधिकरण नहीं होगा, क्योंकि पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोगी का अधिकरण ही पर्वत हो जाता है, तथापि साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से प्रतियोगी का अनधिकरण पर्वत हो जायगा । [redacted] प्रकार प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव तो प्रसिद्ध हो सकता है पुनः अप्रसिद्धि कैसे ?

❁ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❁

रिति वाच्यम्, घटाभावे यो वह्न्यभावस्तस्य घटाभावात्मकतया घटाभावस्य वह्निरपि प्रतियोगी तदधिकरणं च पर्वतादिरित्येवंक्रमेण प्रतियोगिव्यधिकरणस्याप्रसिद्धत्वात् । यदि च घटाभावादौ वह्न्यभावादिर्भिन्न इत्युच्यते, तदापि धूमाभाववान् वह्न्यभावादित्यादावव्याप्तिः—तत्र साध्यतावच्छेदकसम्बन्धः स्वरूपसम्बन्धः तेन सम्बन्धेन सर्वस्यैवाभावस्य पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोग्यधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्येति ।

❁ प्रभा ❁

दोषस्य दुर्वारत्वात् । साध्यतावच्छेदकेन स्वरूपसम्बन्धेन अभावमात्रस्य पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोग्यधिकरणत्वेन प्रतियोगिव्यधिकरणस्याभावात् ।

यद्यपि यत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्येति पक्षे घटाभावीयत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकघटत्वावच्छिन्नानधिकरणत्वस्य पर्वते सत्त्वेन प्रतियोगिव्यधिकरणाभावप्रसिद्ध्या समन्वये नासम्भवशंका । तथापि आत्मा कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वादित्यादौ सद्धेतौ कपिसंयोगाभावसाध्यके आत्मत्वहेतुकेऽव्याप्तिः स्यात्, साध्याभावप्रसिद्धेः प्रसक्तेः । तथाहि—साध्याभावः कपिसंयोगाभावाभावः कपिसंयोगरूपः, तत्र कपिसंयोगे

❁ सरस्वती ❁

उत्तर—अभावाधिकरणक अभाव अधिकरणस्वरूप होता है इस नियम से घटाभाव में जो वह्न्यभाव वह घटाभावस्वरूप होगा, इस प्रकार घटाभाव का प्रतियोगी वह्नि भी हो जायगा, वह पर्वत में है ही, पुनः प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव की अप्रसिद्धि बनी रहेगी ।

प्रश्न—घटाभाव आदि में रहनेवाला वह्न्यभाव आदि भिन्न ही होता है, अधिकरणस्वरूप नहीं, ऐसा भी किसी किसी का मत है, तब तो अप्रसिद्धि न होगी ।

उत्तर—वैसा मान लेने पर भी 'धूमाभाववान् वह्न्य…' इस स्थल में अव्याप्ति हो जायगी । क्योंकि साध्यतावच्छेदक स्वरूपसम्बन्ध से सभी अभाव के पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोगी का अधिकरण हेत्वधिकरण हो जायगा ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

तृतीये तु कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वादित्यादावव्याप्तिः—तत्रात्मवृत्तिकपिसंयोगाभावाभाव कपिसंयोगस्तस्य गुणत्वात् तत्प्रतियोगितावच्छेदकं गुणसामान्याभावत्वमपि तदवच्छिन्नानधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्यात्मन इति ।

मैवम्—यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेतुमतस्तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकत्वस्य विवक्षितत्वात् ।

● प्रभा ●

कपिसंयोगस्य गुणत्वं च धर्मौ सिद्धौ । साध्याभावप्रतियोगितावच्छेदकं कपिसंयोगाभावत्वम् गुणसामान्याभावत्वं च । तत्र यत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकधर्मेण गुणसामान्याभावत्वमुपादाय तदवच्छिन्नानधिकरणत्वमात्मन इति साध्याभावो गृहीतः स्यात् प्रतियोगिव्यधिकरण इति स्वघटकत्वपादाने च बाधाभावात् ? इति कथम् प्रतियोगिव्यधिकरणत्वपरिष्कार इति चिन्तायामाह मैवमिति । यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्य तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नेत्यादि लक्षणम् । प्रकृते च यादृशप्रतियोगितावच्छेदकत्वेन गुणसामान्याभावत्वम्, तदवच्छिन्नानधिकरणत्वमिति तत्प्रतियोगितानवच्छेदकं यत् साध्यतावच्छेदकं कपिसंयोगाभावत्वं तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यलक्षणनिर्वाहात् ।

● सरस्वती ●

१—तीसरे कल्प में 'कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वात्' इस सद्धेतु में अव्याप्ति हो जायगी । क्योंकि आत्मवृत्ति कपिसंयोगाभावाभाव है कपिसंयोगस्वरूप, वह गुण है, अतः प्रतियोगितावच्छेदक गुणसामान्याभावत्व भी होगा, तदवच्छिन्न का अधिकरण हेत्वधिकरण आत्मा नहीं ।

विशिष्टसमाधान—यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न का अनधिकरण हेत्वधिकरण हो तादृशप्रतियोगिता का अनवच्छेदक साध्यतावच्छेदक ऐसा अर्थ करने से सभी दोष हट जायेंगे ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

ननु कालो घटवान् कालपरिमाणादित्यत्र प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धिः—हेत्वधिकरणस्य महाकालस्य जगदाधारतया सर्वेषामेवाभावानां साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन कालिकविशेषणतया प्रतियोग्यधिकरणत्वात् ।

अत्र केचित्—महाकालभेदविशिष्टघटाभावस्तत्र प्रतियोगिव्यधिकरणः, महाकालस्य घटाधारत्वेऽपि महाकालभेदविशिष्टघटानाधारत्वात्, महाकाले महाकालभेदाभावात् ।

● प्रभा ●

ननु कालः घटवान् कालपरिमाणात् इति कालपक्षके कालिकसम्बन्धेन घट-साध्यके कालपरिमाणहेतुके सद्धेतौ प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिः स्यात्, तथाहि कालपरिमाणस्य हेतोः अधिकरणम् महाकालः, स च जगतामाश्रय इति सर्वसिद्धान्तात् सर्वस्याप्यभावस्य प्रतियोगी कालिकसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकेन तत्र महाकाले वर्तते इति न कोऽप्यभावः प्रतियोगिव्यधिकरणतया लब्धुं शक्यः स्यात् इति शङ्कायामाह 'अत्र केचिदाहुः' । अयम्भावः-घट-भूतले घटो वर्तते तत्रैव स्वरूपेण महाकालभेदोऽपि इति सामानाधिकरण्य (एकाधिकरणवृत्तित्व) सम्बन्धेन घटः महाकालभेदविशिष्टो भवति, तस्य च महाकालभेदविशिष्टस्य घटस्य अभावो महाकाले लभ्यते, इति स भविष्यति प्रतियोगिव्यधिकरण, महाकाल-भेदविशिष्टघटाभावीया प्रतियोगिता महाकालभेदविशिष्टघटनिष्ठा, प्रतियोगिता-वच्छेदकम् महाकालभेदविशिष्टघटत्वम्, तदनवच्छेदकं शुद्धसाध्यतावच्छेदकं घटत्वं, तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्य कालपरिमाणहेतौ इति दोषाभावात् तदाह महाकाल-स्येत्यादिना ।

● सरस्वती ●

प्रश्न—'कालो घटवान्' इस सद्धेतुस्थल में अव्याप्ति हो जायगी; क्योंकि हेतु का अधिकरण जो महाकाल वह समस्तजगत् का आधार है, उस में साध्यतावच्छेदक कालिकसम्बन्ध से सभी अभाव प्रतियोगिसमानाधिकरण हो जायेंगे ।

उत्तर—महाकालभेदविशिष्ट घटाभाव ही प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव प्रसिद्ध हो जायगा । क्योंकि महाकाल में महाकालभेदविशिष्ट घट कदापि नहीं रह सकता ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

वस्तुतस्तु प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणीभूत-हेत्वधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगितासामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वयद्धर्माव-च्छिन्नत्वोभयाभावस्तेन सम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य तद्धेतुव्यापकत्वं

• प्रभा •

तावता निवेशप्रवेशकल्पनाप्रकृतेन शास्त्रार्थेन मनो न विश्राम्यति चेत् सिद्धान्तमाह वस्तुतस्त्विति। यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभावपदे यत्सम्बन्धयद्धर्मपदाभ्यां साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध-साध्यतावच्छेदकधर्मौ विवक्षितौ। समन्वयश्च पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यत्र संयोगेन घटाभावः गृह्यते, तत्र प्रतियोगिता घटनिष्ठा, प्रतियोगितावच्छेदकः सम्बन्धः संयोगः, तेन प्रतियोग्यनधिकरणीभूतहेत्वधिकरणवृत्त्यभाव (घटाभाव) प्रतियोगितासामान्ये साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-साध्यतावच्छेदकवह्नित्वधर्मावच्छिन्नत्वोभया-भावः (संयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्वेऽपि वह्नित्वावच्छिन्नत्व नास्ति इति एकसत्त्वेऽपि द्वय नास्ति इति रीत्या सिद्ध्यति, तन्नोभयाभावः प्रतियोगितायाम्) तेन सम्बन्धेन (संयोगसम्बन्धेन) तद्धर्मावच्छिन्नस्य (साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नस्य वह्नित्वावच्छिन्नस्य) वह्नेः तद् (धूम) हेतुव्यापकत्वमिति तत्सामानाधिकरण्य धूमहेतोर्व्याप्तिः।

कालो घटवानित्यत्र च काल्परिमाणहेत्वधिकरणे महाकाले संयोगेन घटाभावो ग्राह्यः। तथा च प्रतियोगितावच्छेदकेन संयोगसम्बन्धेन घटात्मकप्रतियोग्य-नधिकरणीभूतहेत्वधिकरणमहाकालवृत्तिसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटाभावीयप्रतियोगि-तासामान्ये साध्यतावच्छेदककालिकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-साध्यतावच्छेदकघटत्वा-वच्छिन्नत्वोभयाभावः (घटत्वावच्छिन्नत्वसत्त्वेऽपि संयोगसम्बन्धावच्छिन्नतया कालिकसम्बन्धावच्छिन्नत्वविरहप्रयुक्तः) तेन सम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकत्वेन कालिक-

• सरस्वती •

वस्तुतः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध से प्रतियोगी का अनधिकरणीभूत जो हेत्वधिकरण, उस में रहनेवाला जो अभाव उसके प्रतियोगितासामान्य में साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व तथा साध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्व उभय का

बोध्यम् । व्यापकसामानाधिकरण्यं च व्याप्तिः । यत्सम्बन्धः साध्यतावच्छेदकसम्बन्धः, यद्धर्मः साध्यतावच्छेदकधर्मः । तत्र यदि यद्धर्मावच्छिन्नत्वाभावमात्रमित्युच्यते तदा समवायेन यो वह्न्यभावस्तस्य प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धः समवायस्तेन प्रतियोग्यधिकरणपर्वतादिवृत्तिः स एव, तत्प्रतियोगितावच्छेदकं वह्नित्वमित्यव्याप्तिः स्यात् । यदि च यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वाभावमात्रमित्युच्यते तदा तादृशस्य संयोगेन घटाभावस्य प्रतियोगितायाः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्वसत्त्वादव्याप्तिः स्यादत उभयमुपात्तम् ।

• प्रभा •

सम्बन्धेन तद् (साध्यतावच्छेदकघटत्व) धर्मावच्छिन्नो घट, तद् (कालपरिमाण) हेतुव्यापक तत्सामानाधिकरण्य हेतौ कालपरिमाणस्येति न दोषः । उभयाभाव प्रविष्टयो पदद्वयमाह मूले तत्र यदीति । अयमाशय, तादृशप्रतियोगितासामान्ये यद्धर्मावच्छिन्नत्वाभावमात्रोपादाने यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वाभावानुपादाने च पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यत्रैव स्यादव्याप्ति, तथाहि समवायेन वह्न्यभाव पर्वते प्रसिध्यते, तत्र प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध समवाय, तेन प्रतियोगिवह्न्यधिकरणपर्वतादिवृत्ति स एव (अभाव) तत्प्रतियोगिता वह्नौ, प्रतियोगितावच्छेदकं वह्नित्वं, तदेव साध्यतावच्छेदकमिति । अतः यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वाभावोऽप्युपादीयते । सति तस्मिन् यद्धर्मं (साध्यतावच्छेदक) तदवच्छिन्नत्वेऽपि यत्सम्बन्ध (साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्ध) तदवच्छिन्नत्वाभावात् प्रतियोगितासामान्य उभयाभावसत्त्वेन निर्वाहात् ।

यदि च तत्र प्रतियोगितायाम् यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वाभावमात्रमुपादीयते न यद्धर्मावच्छिन्नत्वाभावोऽपीति, तदा पर्वतो वह्निमान् इत्यत्रैव स्यादव्याप्ति, संयोगेन घटाभावस्य प्रतियोगितायां यत्सम्बन्ध (साध्यतावच्छेदक संयोग)

• सरस्वती •

अभाव हो उस साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध से तत्साध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्न साध्य को तद्धेतु का व्यापक होना चाहिये, ऐसा लक्षण कर देने से सभी दोषों का उद्धार हो जायगा ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

इत्थं च कालो घटवान् कालपरिमाणादित्यादौ संयोगसम्बन्धेन घटाभावप्रतियोगिनोऽपि घटस्यानधिकरणे हेत्वधिकरणे महाकाले वर्तमानः स एव संयोगेन घटाभावः, तस्य प्रतियोगितायाः कालिकसम्बन्धावच्छिन्नत्व घटत्वावच्छिन्नत्वोभयाभावसत्त्वान्नाव्याप्तिः ।

ननु प्रमेयवह्निमान् धूमादित्यादौ प्रमेयवह्नित्वावच्छिन्नत्वमप्रसिद्धं गुरुधर्मस्यानवच्छेदकत्वादिति चेद् न,

कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीति प्रतीत्या कम्बुग्रीवादिमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगितावित्रयीकरणेन गुरुधर्मस्याप्यवच्छेदकत्वस्वीकारादिति सङ्क्षेपः ॥६९॥

● प्रभा ●

तदवच्छिन्नत्वमस्त्वादिति यद्धर्मावच्छिन्नत्वाभावोऽप्युपादीयते ।

नन्वेवमपि 'सम्भवति लघौ धर्मे गुरौ तदभावात्' इति सिद्धान्तेन नैयायिकसम्मतेन लघुधर्मस्यैव अवच्छेदकत्वं न गुरुधर्मस्येति रीत्या प्रमेयवह्निमान् धूमात् इति सद्धेतौ धूमाधिकरणपर्वतवृत्त्यभावप्रतियोगितासामान्ये यत् (साध्यतावच्छेदकप्रमेयवह्नित्व) धर्मावच्छिन्नत्वम् अप्रसिद्धमिति कथमपि लक्षणसमन्वयो न स्यादिति चेदत्राह कम्बुग्रीवादीति । अयमाशय, कम्बुग्रीवादिमान् घट, यथा घटो नास्तीत्यभाव अनुभूयते तथा कम्बुग्रीवादिमान् नास्तीत्यपि प्रतीयते, अतः प्रतीतिबलेन प्रतियोगितायाम् कम्बुग्रीवादिमत्त्वावच्छिन्नत्वम् मन्यते । तथाच प्रतियोगितावच्छेदक

● सरस्वती ●

इस प्रकार 'कालो घटवान्' यहाँ पर संयोगसम्बन्ध से घटाभावप्रतियोगी घट के अधिकरण महाकाल में संयोगसम्बन्ध से वर्तमान यही घटाभाव, उसकी प्रतियोगिता में कालिकसम्बन्धावच्छिन्नत्व घटत्वावच्छिन्नत्व उभय का अभाव रहने से अव्याप्ति न होगी ।

प्रश्न—प्रमेयवह्निमान् धूमात् इस सद्धेतुस्थल में गुरुधर्म प्रमेयवह्नित्व की अवच्छेदकता अमान्य होने से अप्रसिद्धया अव्याप्ति हो जायगी ?

उत्तर—कम्बुग्रीवादिमान् नास्ति इत्यादि प्रतीति से गुरुधर्म भी प्रतियोगिता का अवच्छेदक मान लिया जाता है ।

❀ कारिकावली ❀

सिषाधयिषया शून्या सिद्धिर्यत्र न विद्यते ।
स पक्षस्तत्र वृत्तित्वज्ञानादनुमितिर्भवेत् ॥ ७० ॥

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

पक्षवृत्तित्वमित्यत्र पक्षत्वं किं तदाह—सिषाधयिषयेति । सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावः पक्षता, तद्वान्पक्ष इत्यर्थः ।

● प्रभा ●

कम्बुग्रीवादिमत्त्वम् मान्यमेव । अतएव अवच्छेदकत्वनिरुक्तिग्रन्थे 'प्रतीतिबलाद् गुरुरपि धर्मोऽवच्छेदकः प्रतियोगितायाः' इति स्पष्टमुक्तम् । तथा च प्रकृते प्रमेयवह्नित्वमपि प्रतियोगितावच्छेदकं सम्भवतीति न प्रमेयवह्नित्वावच्छिन्नत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिरिति संक्षेपः ॥ ६९ ॥

पक्षतां निरूपयति सिषाधयिषयेति । यत्र सिषाधयिषया शून्या सिद्धिः न विद्यते स पक्षः, तत्र वृत्तित्वज्ञानात् अनुमितिः भवेदिति स्पष्टम् । साधयितुमिच्छा सिषाधयिषा तया शून्या या सिद्धिः सा यत्र न विद्यते स पक्षः । लक्षणं निर्वक्ति सिषाधयिषेति । सिषाधयिषाया यो विरहः (अभावः) तेन विशिष्टा (सवलिता) या सिद्धिः तस्या अभावः पक्षता तद्वान् (पक्षतावान्) पक्ष इति तदर्थः । अत्राय-मभिसन्धिः, सिद्धि = निश्चयः, प्रत्यक्षादिसंभूतः । यत्र पर्वतो वह्निमान् इति प्रत्यक्षेण निश्चयो जातः तत्र सिद्धिः (निश्चयः प्रत्यक्षात्मकः) वर्तते इति तत्र अनुमितिर्न भवति । यदि सत्यपि प्रत्यक्षनिश्चये कस्यचित् इच्छा (सिषाधयिषा) भवेत् पर्वते वह्न्यनुमितिर्मे जायताम् इति, तदा प्रत्यक्षादिनिश्चयसत्त्वेऽपि भवेदेवानुमितिः, यतो हि प्रत्यक्षादिनिश्चयः प्रतिबन्धको न भवितुमर्हति, यथा हि सिषाधयिषाविरहविशिष्टा सिद्धिः प्रतिबन्धिका भवति, इयन्तु सिषाधयिषाविशिष्टैव जातेति प्रतिबन्धसामर्थ्यं नास्ति इति ।

● सरस्वती ●

पक्षवृत्तित्व में पक्षता क्या है ? अतः उसका निरूपण करते हैं—

साधन करने की जो इच्छा, उसका जो अभाव, उस से विशिष्ट जो सिद्धि, उस के अभाव को पक्षता कहते हैं। वह जिस में रहे उसका नाम पक्ष होता है।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

काले परामर्शनाशान्नानुमितिः, यत्र सिद्धिपरामर्शसिषाधयिषाः क्रमेण भवन्ति तत्र सिषाधयिषाकाले सिद्धेर्नाशात्प्रतिबन्धकाभावादेवानुमितिः, यत्र सिषाधयिषासिद्धिपरामर्शाः सन्ति तत्र परामर्शकाले सिषाधयिषैव नास्ति, एवमन्यत्रापि सिद्धिकाले परामर्शकाले वा न सिषाधयिषा-योग्य-विभुविशेषगुणानां यौगपद्यनिषेधात्, तत्कथं सिषाधयिषाविरहविशिष्टत्वं सिद्धेर्विशेषणमिति चेद् न,

यत्र वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानिति प्रत्यक्षं स्मरणं वा ततः

● प्रभा ●

जन्यं ज्ञान स्वोत्पत्तितृतीयक्षणेऽवश्यं नश्यति, एष एव अन्यज्ञानस्वभावः, यत्र च प्रथमक्षणे परामर्शः, ततः सिद्धिः, ततः सिषाधयिषेति क्रमः, तत्र परामर्शस्य सिषाधयिषाक्षणे नाशात् परामर्शरूपकारणाभावात् अनुमितिर्न भवति। यत्र प्रथमं सिद्धिः, ततः परामर्शः, ततः सिषाधयिषा, तत्र सिषाधयिषाक्षणे स्वतृतीये सिद्धेर्नाशात् प्रतिबन्धकाभावात् भवत्यनुमितिः। यत्र प्रथम सिषाधयिषा, ततः सिद्धिः, ततः परामर्शः, तत्र परामर्शकाले स्वतृतीयक्षणे सिषाधयिषैव नास्ति इति प्रतिबन्धकसद्भावात् नैवानुमितिः। इति रीत्या कार्यनिर्वाहे सिषाधयिषाविरह-विशिष्टत्व सिद्धेर्विशेषणे कथमङ्गीक्रियत इति प्रश्नः।

प्रयोजनमाह यत्रेति। प्रत्यक्षमिति। अनुमितीतरसाधनसाधिपरत्वे 'वह्नि-

● सरस्वती ●

क्षण में परामर्शनाश हो जाने से अनुमिति नहीं। जहाँ सिद्धि परामर्श सिषाध-यिषा क्रम से होती है, वहाँ सिषाधयिषाक्षण में सिद्धि के नाश हो जाने से प्रति-बन्धक न रहने के कारण अनुमिति हो जाती है। जहाँ सिषाधयिषा सिद्धि तथा परामर्श रहे वहाँ परामर्शकाल में सिषाधयिषा ही नहीं। इसी प्रकार अन्यत्र भी सिद्धिकाल में, परामर्शकाल में सिषाधयिषा न रहेगी, क्योंकि योग्यविभुविशेषगुणों का एक समय में रहना नहीं होता। अतः सिषाधयिषाविरहविशिष्टत्व सिद्धि का विशेषण कैसे ?

उत्तर—जहाँ वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान् यह प्रत्यक्ष अथवा स्मरण

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

सिषाधयिषा तत्र पक्षतासम्पत्तये तद्विशेषणस्यावश्यकत्वात् ।

अत्रेदं बोध्यम् । यादृशयादृशसिषाधयिषासत्त्वे सिद्धिसत्त्वे यल्लिङ्गकानुमितिस्तादृशतादृशसिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभाववत्तल्लिङ्गकानुमितौ पक्षता । तेन सिद्धिपरामर्शसत्त्वेऽपि यत्किञ्चिज्ज्ञानं जायतामिती-

● प्रभा ●

व्याप्यधूमवान् पर्वत अनुमितिरिष्टसाधनम्' इति समूहालम्बनपरामर्शे तात्पर्यम् । तादृशविशेषणानुपादाने सिद्धिमात्रस्य प्रतिबन्धकत्वे इह अनुमितिर्न स्यादित्यपि । अतो विशेषणमावश्यकं तथा सति सिषाधयिषाविरहविशिष्टा सिद्धिः प्रतिबन्धिका, न सिद्धिमात्रम्, सिषाधयिषासहकृता च सिद्धिर्न प्रतिबध्नातीति हृदयम् ।

ननु यत्र सिद्धिः परामर्शश्च, तत्र 'यत्किञ्चिद् ज्ञानं जायताम्' इत्याकारके च्छया इच्छाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावेन कुतो नानुमितिरिति चेदत्राह अत्रेदं बोध्यमिति । तथा च यादृशसिषाधयिषासत्त्वे सिद्धिसत्त्वे यद्धेतुकानुमितिः प्रामाणिकी तादृशतादृशसिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावः तद्धेतुकानुमितौ कारणीभूता पक्षतेति, नतु यां कामपि इच्छामादाय पक्षतालक्षणं बलाद्धेतुं शक्यत इति न दोषः । सिषाधयिषायाः आकारस्तु एतल्लक्षक एतत्साध्यक एतद्धेतुकानुमितिर्मे जायतामित्यादि । अत्र अनुमितित्वम् प्रकार, अनुमितित्वप्रकारिका च सिषाधयिषा । अनुमितित्वप्रकारकत्वमुपलक्षणम्, अत एव वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानिति प्रत्यक्षसत्त्वे 'प्रत्यक्षातिरिक्तं ज्ञानं मे जायताम्' इति प्रत्यक्षातिरिक्तत्वप्रकारकसिषाधयिषासत्त्वेऽप्यनुमितेरिष्टत्वम् । यल्लिङ्गक परामर्शं वह्निव्याप्यक सिषाधयिषैव

● सरस्वती ●

हो उसके बाद सिषाधयिषा, वहाँ पर पक्षता बनने के लिये उस विशेषण का लगाना आवश्यक है ।

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि—जैसी जैसी सिषाधयिषा रहते सिद्धि रहते जिस हेतु की अनुमिति होती हो वैसी वैसी सिषाधयिषा के अभाव से विशिष्ट जो सिद्धि उस का अभाव उस हेतुवाली अनुमिति में पक्षता हो ।

अतः सिद्धिपरामर्श रहने पर भी 'मुझे कुछ ज्ञान हो' ऐसी इच्छा रहने पर

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

च्छायामपि नानुमितिः। वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानिति प्रत्यक्षसत्त्वे प्रत्यक्षातिरिक्तं ज्ञानं जायतामितीच्छायां तु भवत्येव। एवं धूमपरामर्शसत्त्वे आलोकेन वह्निमनुमिनुयामितीच्छायामपि नानुमितिः।

सिषाधयिषाविरहकाले यादृशसिद्धिसत्त्वे नानुमितिस्तादृशी सिद्धिर्विशिष्यैव तत्तदनुमितौ प्रतिबन्धिका वक्तव्या, तेन पर्वतस्तेजस्वी पाषाणमयो वह्निमानिति ज्ञानसत्त्वेऽप्यनुमितेर्न विरोधः।

● प्रभा ●

तल्लिङ्गकानुमितौ अनिच्छेति निवेशस्योक्तत्वात् धूमलिङ्गकपरामर्श-आलोकलिङ्गक सिषाधयिषयो सत्त्वे नानुमितिरिति दर्शयति एवमिति।

तद्धर्मावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिततद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यताशालिनिश्चयः तद्धर्मावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिततद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यताशाल्यनुमितौ प्रतिबन्धको नान्य इत्यर्थः, यथाहि वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताशालिनिश्चयः पर्वतो वह्निमानिति प्रत्यक्षादिः वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताशाल्यनुमितौ प्रतिबन्धक इत्याह विशिष्यैवेति। तत्तद्प्रकारविशेष्य निवेशरूपनियन्त्रणस्य फलमाह तेनेति। तथा च तेजस्त्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताशालि-वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपाषाणमयत्वावच्छिन्नविशेष्यताशालिनिश्चयो या न पर्वतो वह्निमान् इत्यनुमितिं प्रतिबध्नातु प्रसङ्गात्।

इदमनुसन्धेयम्, अनुमितिर्द्विधा भवति, एका पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन, अप-

● सरस्वती ●

भी अनुमिति नहीं होती। वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः वह्निमान् इति प्रत्यक्ष के रहते 'मुझे प्रत्यक्षातिरिक्त ज्ञान हो जाय' ऐसी इच्छा रहने पर अनुमिति होती ही है।

इसी प्रकार धूमपरामर्श रहते आलोकहेतुक इच्छा से अनुमिति नहीं होती। सिषाधयिषा के अभावक्षण में जैसी सिद्धि रहते अनुमिति नहीं होती वैसी सिद्धि विशेषरूप से उन उन अनुमितियों में प्रतिबन्धक कहनी चाहिये। अतः पर्वतस्तेजस्वी'''ऐसा ज्ञान रहने पर भी अनुमिति होही जाती है।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

परन्तु पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धावपि तदवच्छेदेनानुमितिदर्शनात्पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनानुमितिं प्रति पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धिरेव प्रतिबन्धिका। पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमितिं प्रति तु सिद्धिमात्रं विरोधि।

इदं तु बोध्यम्। यत्रायं पुरुषो न वेति संशयानन्तरं पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयमिति ज्ञानं तत्रासत्यामनुमित्सायां पुरुषस्य प्रत्यक्षं भवति

● प्रभा ●

वा पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन। यथा पर्वतो वह्निमान् धूमात् इत्यत्र पक्षः पर्वतः, पक्षता पर्वतनिष्ठा, पक्षताया अवच्छेदकम् पर्वतत्वम्, इति पर्वतत्वावच्छेदेन अर्थात् सर्वत्र पर्वते वह्न्यनुमितिः। पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन अर्थात् पर्वतत्वाधिकरणे क्वचन पर्वते वह्न्यनुमितिः। अनयोः कुत्र साध्यसिद्धिः प्रतिबन्धिका कुत्र च नेति प्रश्न आह परन्त्विति। अर्थात् पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन अनुमितिम् प्रति पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धिः प्रतिबन्धिका, पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमितिम् प्रति तु पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन च साध्यसिद्धिः प्रतिबन्धिकेति निर्णयः।

स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशयानन्तरम् पुरुषत्वव्याप्यहस्तपादादिमानयम् इति यत्र ज्ञाने तत्र यदि अनुमितीच्छा नास्ति तदा पुरुषस्य प्रत्यक्षम् भवति, अनुमितीच्छायां सत्यान्तु प्रत्यक्षम् प्रबाध्य अनुमितिरेवेति दशायाम् अनुमितीच्छा अपि उत्तेजकाऽनुभूयते। तथा च अनुमित्सा (अनुमितीच्छा) विरहविशिष्टसमान-

● सरस्वती ●

परन्तु पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धि रहने पर भी पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन अनुमिति होती है, अतः अवच्छेदावच्छेदेन अनुमिति के प्रति अवच्छेदावच्छेदेन सिद्धि को प्रतिबन्धकता, सामानाधिकरण्येन अनुमिति के प्रति तो दोनों प्रकार की सिद्धियाँ विरोधिनी होती हैं।

विशेषः—जहाँ पर स्थाणु है या पुरुष ऐसा संशय होने के बाद 'पुरुषत्वव्याप्य करादिवाला यह' ऐसा ज्ञान हो जाय वहाँ पर सिषाधयिषा न रहने पर

❀ कारिकावली ❀

अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः ।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा ॥७१॥

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

न त्वनुमितिविरहोऽनुमित्साविरहविशिष्टसमानविषयकप्रत्यक्षसामग्री कामिनीजिज्ञासादिवत्स्वातन्त्र्येण प्रतिबन्धिका ।

एवं परामर्शानन्तरं विनापि प्रत्यक्षेच्छां पक्षादेः प्रत्यक्षानुत्पत्तेः, प्रत्यक्षेच्छाविरहविशिष्टानुमितिसामग्री भिन्नविषयकप्रत्यक्षे प्रतिबन्धिका ॥७०॥

हेतुप्रसङ्गाद्धेत्वाभासान्विभजते—अनैकान्त इति ।

● प्रभा ●

विषयकप्रत्यक्षसामग्री प्रतिबध्नात्यनुमिति स्वातन्त्र्येण । स्वतन्त्रप्रतिबन्धकतायां निदर्शनमाह कामिनीति । अर्थात् का कामिनी इति कामिनीजिज्ञासा (ज्ञानेच्छा) यदा यस्य प्राणिनो भवति तदा तस्य अन्यत् ज्ञानमात्र न भवति, इत्यनुभवगम्यः कामिनीजिज्ञासा स्वातन्त्र्येण ज्ञानमात्रप्रतिबन्धिकेति सिद्धान्तः ।

प्रसङ्गात् अन्यत्रापि प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावमाह एवमपि । परामर्शानन्तरम् अनुमितिर्भवति न प्रत्यक्षम् । परन्तु प्रत्यक्षं मे जायतामिति यदा परामर्शानन्तरम् प्रत्यक्षेच्छा तदा प्रत्यक्षमेव नानुमितिरिति प्रत्यक्षेच्छा उत्तेजिका । तथाच प्रत्यक्षेच्छाविरहविशिष्टानुमितिसामग्री भिन्नविषयकप्रत्यक्षम् प्रतिबध्नातीति कार्यकारणभावोऽपि ॥ ७० ॥

प्रसङ्गसङ्गत्या हेत्वाभासान् निरूपयति अनैकान्त इति । अनैकान्त, विरुद्धः

● सरस्वती ●

पुरुष का प्रत्यक्ष होता है न कि अनुमिति । अतः कामिनीजिज्ञासा की तरह अनुमितीच्छा के विरह से विशिष्ट जो समानविषयक प्रत्यक्षसामग्री वह स्वतन्त्ररूप से प्रतिबन्धक होती है ।

इसी प्रकार परामर्श के बाद बिना प्रत्यक्ष की इच्छा के पक्ष आदि का प्रत्यक्ष न होने से प्रत्यक्ष की इच्छा का जो अभाव उस से विशिष्ट जो अनुमिति की सामग्री वह भिन्नविषयक की प्रतिबन्धिका होती है । हेतु के प्रसङ्ग से हेत्वाभास

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

तल्लक्षणं तु यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वं तत्त्वम्। तथाहि-व्यभिचारादिविषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वात्ते दोषाः। यद्विषयकत्वं च यादृशविशिष्टविषयकत्वम्, तेन बाधभ्रमस्यानुमितिविरोधित्वेऽपि न क्षतिः। तत्र पर्वतो वह्न्यभाववानिति विशिष्टस्याऽसिद्धत्वान्न हेतुदोषः।

• प्रभा •

च अपि असिद्धः प्रतिपक्षितः, कालात्ययापदिष्टः च हेत्वाभासाः तु पञ्चधा। हेतुवत् आभासन्ते इति हेत्वाभासाः अहेतवो दुष्टहेतवो वा। हेतोः आभासाः इति षष्ठीतत्पुरुषसमास इति हेतुनिष्ठा आभासा दोषा इति यावत्। तथा च हेत्वाभासा इत्यस्य हेतुदोषा इत्यर्थः। दोषलक्षणमाह तल्लक्षणन्त्विति। यः विषयो यस्य तद् यद्विषयकं तस्य भावो यद्विषयकत्वम् तेन यद्विषयकत्वेन। तृतीया विमर्शेऽर्थः अवच्छिन्नत्वम्, ज्ञानस्य इति षष्ठ्या निष्ठत्वमर्थः, विरुणद्धि इति विरोधि (प्रतिबन्धकम्) अनुमितेः विरोधि अनुमितिविरोधि तस्य भावः अनुमितिविरोधित्वम्। तथा च यद्विषयकत्वावच्छिन्ना ज्ञाननिष्ठा अनुमितिप्रतिबन्धकता तत्त्वं हेत्वाभासत्वमिति लक्षणम्। यथा ह्रदो वह्निमान् इत्यनुमितिर्न भवति तत्र वह्न्यभाववान् ह्रद इति बाधदोषवत्त्वात् प्रतिबन्धात्। तथाहि वह्न्यभाववद्ह्रदविषयकत्वेन ज्ञानस्य वह्न्यभाववान् ह्रद इत्याकारकस्य वह्निमान् ह्रद इत्यनुमितिनिष्ठप्रतिबध्यतानिरूपिता प्रतिबन्धकता तत्त्वं वह्न्यभाववान् ह्रद इति दोषे इति समन्वयः। स्वयमाह तथाहीति। ते = व्यभिचारादयः।

• सरस्वती •

का विभाग करते हैं अनेकान्त इत्यादि। हेत्वाभास का जो यद्विषयत्वेन ज्ञान की अनुमितिप्रतिबन्धकता हो तत्व ही लक्षण है।

जैसे—व्यभिचारादिविषयकत्व से ज्ञान को अनुमितिविरोधित्व होने से ये व्यभिचार आदि दोष होंगे। यद्विषयकत्व भी यादृशविशिष्टविषयकत्व कहना चाहिये, अन्यथा 'पर्वतो वह्न्यभाववान्' इस बाधभ्रम से अनुमिति का प्रतिबन्ध हो जायगा। ऐसी विवक्षा करने पर वह्न्यभावविशिष्ट पर्वत के अप्रसिद्ध होने से

॥ कारिकावली ॥

अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः ।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा ॥७१॥

॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॥

न स्वनुमितिरस्तोऽनुमित्साविरहविशिष्टसमानविषयकप्रत्यक्षसामग्री कामिनीजिज्ञासादिवस्स्वातन्त्र्येण प्रतिबन्धिका ।

एवं परामर्शानन्तरं विना प्रत्यक्षेच्छां पक्षादेः प्रत्यक्षानुत्पत्तेः, प्रत्यक्षेच्छाविरहविशिष्टानुमितिसामग्री भिन्नविषयकप्रत्यक्षे प्रतिबन्धिका ॥७०॥

हेतुप्रसङ्गाद्धेत्वाभासान्विभजते—अनैकान्त इति ।

॥ प्रभा ॥

विषयकप्रत्यक्षसामग्री प्रतिबध्नात्यनुमिति स्वातन्त्र्येण । स्वतन्त्रप्रतिबन्धकतायां निदर्शनमाह कामिनीति । अर्थात् का कामिनी इति कामिनीजिज्ञासा (ज्ञानेच्छा) यदा यस्य प्राणिनो भवति तदा तस्य अन्यत् ज्ञानमात्रं न भवति, इत्यनुभवगम्यः कामिनीजिज्ञासा स्वातन्त्र्येण ज्ञानमात्रप्रतिबन्धिकेति सिद्धान्तः ।

प्रसङ्गात् अपरमपि प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावमाह एवमपि । परामर्शानन्तरम् अनुमितिर्भवति न प्रत्यक्षम् । परन्तु प्रत्यक्षं मे जायतामिति यदा परामर्शानन्तरम् प्रत्यक्षेच्छा तदा प्रत्यक्षमेव नानुमितिरिति प्रत्यक्षेच्छा उत्तेजिका । तथाच प्रत्यक्षेच्छाविरहविशिष्टानुमितिसामग्री भिन्नविषयकप्रत्यक्षम् प्रतिबध्नातीति कार्यकारणभावोऽपि ॥ ७० ॥

प्रसङ्गसङ्गत्या हेत्वाभासान् निरूपयति अनैकान्त इति । अनैकान्तः, विरुद्धः

॥ सरस्वती ॥

पुरुष का प्रत्यक्ष होता है न कि अनुमिति । अतः कामिनीजिज्ञासा की तरह अनुमितीच्छा के विरह से विशिष्ट जो समानविषयक प्रत्यक्षसामग्री वह स्वतन्त्ररूप से प्रतिबन्धक होती है ।

इसी प्रकार परामर्श के बाद विना प्रत्यक्ष की इच्छा के पक्ष आदि का प्रत्यक्ष न होने से प्रत्यक्ष की इच्छा का जो अभाव उस से विशिष्ट जो अनुमिति की सामग्री [illegible] भिन्नविषयक की प्रतिबन्धिका होती है । हेतु [illegible] प्रसङ्ग से हेत्वाभास

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

तल्लक्षणं तु यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वं तत्त्वम् । तथाहि–व्यभिचारादिविषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वात्ते दोषाः। यद्विषयकत्वं च यादृशविशिष्टविषयकत्वम्, तेन बाधभ्रमस्यानुमितिविरोधित्वेऽपि न क्षतिः। तत्र पर्वतो वह्न्यभाववानिति विशिष्टस्याऽसिद्धत्वान्न हेतुदोषः।

● प्रभा ●

च अपि असिद्धः प्रतिपक्षितः, कालात्ययापदिष्टः च हेत्वाभासाः तु पञ्चधा। हेतुवत् आभासन्ते इति हेत्वाभासाः अहेतवो दुष्टहेतवो वा। हेतोः आभासाः इति षष्ठीतत्पुरुषसमास इति हेतुनिष्ठा आभासा दोषा इति यावत्। तथा च हेत्वाभासा इत्यस्य हेतुदोषा इत्यर्थः। दोषलक्षणमाह तल्लक्षणन्त्विति। यः विषयो यस्य तद् यद्विषयकं तस्य भावो यद्विषयकत्वम् तेन यद्विषयकत्वेन। तृतीया विभक्त्यर्थः अवच्छिन्नत्वम्, ज्ञानस्य इति षष्ठ्या निष्ठत्वमर्थः, विरुणद्धि इति विरोधि (प्रतिबन्धकम्) अनुमितेः विरोधि अनुमितिविरोधि तस्य भावः अनुमितिविरोधित्वम्। तथाच यद्विषयकत्वावच्छिन्ना ज्ञाननिष्ठा अनुमितिप्रतिबन्धकता तत्त्वं हेत्वाभासत्वमिति लक्षणम्। यथा ह्रदो वह्निमान् इत्यनुमितिर्न भवति तत्र वह्न्यभाववान् [illegible] इति बाधदोषसत्त्वात् प्रतिबन्धात्। तथाहि वह्न्यभाववद्ह्रदविषयकत्वेन ज्ञानस्य वह्न्यभाववान् ह्रद इत्याकारकस्य वह्निमान् ह्रद इत्यनुमितिनिष्ठप्रतिबध्यतानिरूपिता प्रतिबन्धकता तत्त्वं वह्न्यभाववान् ह्रद इति दोषे इति समन्वयः। स्पष्टमाह तथाहीति। ते=व्यभिचारादयः।

● सरस्वती ●

का विभाग करते हैं अनैकान्त इत्यादि। हेत्वाभास का तो यद्विषयत्वेन ज्ञान की अनुमितिप्रतिबन्धकता हो तत्त्व ही लक्षण है।

जैसे—व्यभिचारादिविषयकत्व से ज्ञान को अनुमितिविरोधित्व होने से वे व्यभिचार आदि दोष होंगे। यद्विषयकत्व भी यादृशविशिष्टविषयकत्व कहना चाहिये, अन्यथा 'पर्वतो वह्न्यभाववान्' इस बाधभ्रम से अनुमिति का प्रतिबन्ध हो जायगा। ऐसी विवक्षा करने पर वह्न्यभावविशिष्ट पर्वत के अप्रसिद्ध होने से

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

न च वह्न्यभावव्याप्यपाषाणमयत्ववानितिपरामर्शकाले वह्निव्याप्यधूमस्याभासत्वं न स्याचत्र वह्न्यभावव्याप्यवान्पक्ष इति विशिष्टस्याप्रसिद्धत्वादिति वाच्यम्,

इष्टापत्तेः, अन्यथा बाधस्याप्यनित्यदोषत्वापत्तेः। तस्मात्तत्र वह्न्यभावव्याप्यपाषाणमयत्ववानितिपरामर्शकाले वह्निव्याप्यधूमस्य नाभा-

● प्रभा ●

ननु एवम् पर्वतो वह्निमान् इत्यनुमितिर्न स्यात् तत्र पर्वतो वह्न्यभाववानिति भ्रमात्मकबाधस्य सत्त्वेन प्रतिबन्धात्। तथाहि यद्विषयकत्वावच्छिन्नत्वेन (वह्न्यभाववत्पर्वतविषयकत्वावच्छिन्नत्वेन) ज्ञानस्य वह्न्यभाववान् पर्वत इत्यस्य वह्निमान् पर्वत इति ज्ञाननिष्ठप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकता तत्त्वं तादृशभ्रमे इति चेन्न, यद्विषयकत्वं यादृशविशिष्टविषयकत्वम् अर्थात् यद्रूपावच्छिन्नविषयकत्वम्, तथाच यद्रूपावच्छिन्नविषयकत्वावच्छिन्नज्ञाननिष्ठप्रतिबन्धकतेत्यादिलक्षणेन यत् (वह्न्यभाववत्पर्वतत्व) रूपावच्छिन्नेतिवक्तव्ये प्रकृते वह्न्यभाववत्पर्वतत्वाव-च्छिन्नत्वाप्रसिद्धया अनुमितिविरोधपरिहारात्। तदाह मूले पर्वतो वह्न्यभाववानिति विशिष्टस्याप्रसिद्धत्वादिति।

नन्वेवम् वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः इति परामर्शकाले वह्न्यभावव्याप्यपाषाणमयत्ववान् पर्वत इति विरोधिपरामर्शसत्त्वे धूमस्य हेतोः सत्प्रतिपक्षता न स्यात् वह्न्यभावव्याप्यपाषाणमयत्ववत्पर्वतरूपविषयाप्रसिद्धेरिति (विशिष्टस्याप्रसिद्धेरिति यावत्) शङ्काभिप्रायस्ता समाधत्ते इष्टापत्तेरिति। तत्र धूमस्य सत्प्रतिपक्षता नैवेष्टेति भावः। अन्यथा = तादृशस्थले वह्निव्याप्यधूमस्य सत्प्रतिपक्षत्वे। बाधस्यापि अनित्यदोषत्वं स्यादिति भावः। ननु तत्रानुमितिप्रतिबन्धः प्रतीयते कथं

● सरस्वती ●

दोष नहीं हुआ।

प्रश्न—वह्न्यभावव्याप्य पाषाणमयत्व वाला ऐसा परामर्श रहते वह्निव्याप्य-धूम को हेत्वाभासत्व नहीं होगा?

उत्तर—यह आपत्ति [illegible] है, अन्यथा बाधको भी अनित्यदोषता हो जायगी।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

सत्यम्, भ्रमादनुमितिप्रतिबन्धमात्रं हेतुस्तु न दुष्टः।

इत्थं च साध्याभाववद्वृत्तिहेत्वादिकं दोषः। तद्वत्त्वं च हेतौ येन केनापि सम्बन्धेनेति नव्याः।

परे तु यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वं तद्वत्त्वं हेत्वाभासत्वम्, सत्प्रतिपक्षे विरोधिव्याप्त्यादिकमेव तथा, तद्वत्त्वं च हेतोर्ज्ञानरूपसम्बन्धेन। न चैवं वह्निमान् धूमादित्यादौ पक्षे बाधभ्रमस्य साध्याभावविषयकत्वेनानुमितिविरोधित्वाज्ज्ञानरूपसम्बन्धेन तद्वत्त्वस्यापि सत्त्वात्सद्धेतोरपि बाधितत्वापत्तिरिति वाच्यम्, तत्र ज्ञानस्य सम्बन्धत्वा-

● प्रभा ●

स इति समाधानमाह भ्रमादिति। भ्रान्त्या अनुमितिप्रतिबन्ध एव न तु हेतौ दुष्टत्वमिति।

ननु साध्याभाववद्वृत्तिर्हेतुर्व्यभिचारो दोषस्तेन हेतौ दुष्टत्वं कथं स्यादिति चेन्न, स्वज्ञानविषयप्रकृतहेतुतावच्छेदकत्वसम्बन्धेन हेतौ दुष्टत्वव्यवहारस्य सम्भवात्।

हेत्वाभासपदेन दुष्टहेतुर्वाच्य इति केषाञ्चिन्मतमाह परे त्विति। ज्ञानरूपेति। स्वज्ञानविषयप्रकृतहेतुतावच्छेदकत्वसम्बन्धेनेति भावः। सद्धेतौ पर्वतो वह्निमान् इत्यत्र बाधभ्रमाद् बाधितत्वं निरस्यति तत्र ज्ञानस्येति। बाधभ्रमे बाधित इति व्यवहाराप्रतीत्या तथात्वम्। सत्प्रतिपक्षभ्रमे च सत्प्रतिपक्षित इति व्यवहारस्तत्त्वादेव तथात्वस्वीकारात्। एकत्र स्वीकार एकत्र चास्वीकार इति न तर्कसम्मतमित्याहुरित्यनेनास्वरसः सूचितः।

● सरस्वती ●

अतः पूर्वोदाहरण में हेतुको दोषता नहीं किन्तु अनुमिति का प्रतिबन्धमात्र होता है।

अतः साध्याभाववान् में वृत्ति हेतु आदि दोष हैं, वे जिस किसी सम्बन्ध से हेतु में रहें तो हेतु दुष्ट कहलायेगा।

कोई कहते हैं कि यद्विषयकत्वेन""यह दुष्ट हेतु का लक्षण है, दुष्टत्वसत्त्व ही हेत्वाभासत्व है। सत्प्रतिपक्ष में विरोधिव्याप्ति आदि ही वैसे होंगे, तद्वत्त्व हेतु में ज्ञानरूप सम्बन्ध से। वह्निमान् धूमात् इस स्थल में बाधभ्रम में लक्षण नहीं

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

कल्पनात्, अत्र सत्प्रतिपक्षित इति व्यवहारेण तत्कल्पनात्, तत्र बाधित इति व्यवहाराभावादित्याहुः।

अनुमितिविरोधित्वं च अनुमितितत्करणान्यतरविरोधित्वम्। तेन व्यभिचारिणि नाव्याप्तिः। दोषज्ञानं च यद्धेतुविषयकं तद्धेतुकानुमितौ प्रतिबन्धकम्, तेनैकहेतौ व्यभिचारज्ञाने हेत्वन्तरेणानुमित्युत्पत्तेः, तदभावाद्यनवगाहित्वाच्च व्यभिचारज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वाभावेऽपि न क्षतिरिति सङ्क्षेपः।

● प्रभा ●

ननु अनुमितिविरोधित्वं साक्षाद् बाधादेरेव व्यभिचारादिना तु साध्याभाववद्वृत्तित्वादिरूपेण व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्ध एव क्रियते, कथं तथानुमितिविरोधित्वरूपहेत्वाभासत्वं सव्यभिचारादेरिति शङ्कायामाह अनुमितिविरोधित्वं चेति। अयम्भावः, कश्चित् साक्षादनुमितिविरोधी, कश्चिच्च अनुमितिकरणव्याप्तिज्ञानविरोधीति परिष्कृतेऽर्थेनानेन सर्वसङ्ग्रहसम्भवात्। फलमाह तेनेति। व्यभिचारिणि = व्यभिचारस्थलीयहेतौ इत्यर्थः। दोषज्ञानस्य विशिष्य प्रतिबन्धकतामुपस्थापयति दोषेति। विशिष्य निवेशफलमाह तेनेति। अतएव वह्न्यभाववद्वृत्तिपृथिवीत्वमिति व्यभिचारज्ञानसत्त्वेऽपि धूमहेतुमतो पर्वतो वह्निमान् इत्यनुमितिर्न रुध्यते। अथ च साध्याभावाद्यनवगाहितया व्यभिचारज्ञानस्य नानुमितिप्रतिबन्धकतेति स्पष्टम्।

● सरस्वती ●

जायगा, क्योंकि वहाँ पर ज्ञान को सम्बन्धता न मानी जायगी। वहाँ तो व्यवहार के बल से मान ली जाती है। वहाँ तो बाधित. ऐसा व्यवहार नहीं होता।

अनुमितिविरोधित्व है अनुमिति व उस के करण किसी एक का विरोधित्व। इससे व्यभिचारी में अतिव्याप्ति नहीं हुई। दोषज्ञान भी जिस हेतु को लेकर होता है उस हेतु से साध्य अनुमिति का ही प्रतिबन्धक होगा। अतः एक हेतु में व्यभिचारज्ञान होने पर दूसरे हेतु से अनुमिति हो जाती है, साध्याभावादि का अवगाहन न करने से साक्षात् अनुमितिविरोध न करते हुये भी इस की प्रतिबन्धकता बन जायगी। निष्कर्षः—जैसे साध्यपक्षहेतु में जितने दोष सम्भव हों

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

यादृशसाध्यपक्षहेतौ यावन्तो दोषास्तावदन्यान्यत्वं तत्र हेत्वाभासत्वम् । पञ्चत्वकथनन्तु तत्सम्भवस्थलाभिप्रायेण ।

एवञ्च साधारणाद्यन्यतमत्वमनैकान्तिकत्वम् । साधारणः साध्यवदन्यवृत्तिः, तेन च व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः क्रियते । असाधारणः साध्यासमानाधिकरणो हेतुः, तेन साध्यसामानाधिकरण्यग्रहः प्रतिबध्यते । यथा

• प्रभा •

ननु निर्वह्निः पर्वतो वह्निमान् इत्यत्र महत्वभावत्सत्वेऽपि वह्निमान् इत्यनुमितेरप्रसिद्ध्या अनुमितिघटितहेत्वाभासलक्षणासम्भवात् न भवेद् हेत्वाभासव्यवहार इति चेदत्राह यादृशेति । अयमाशयः, ईदृशस्थले यावन्तो दोषाः सम्भवन्ति तावदन्यान्यत्वमेव हेत्वाभासत्वमिति । तथा चात्र वह्निविशिष्टपर्वतरूपाश्रयासिद्धेः धूमाभावविशिष्टनिर्वह्निरूपस्वरूपासिद्धेश्च सत्त्वेन तयोर्हेत्वाभासता भवोष्यत इति ।

नचैवम् पञ्च हेत्वाभासा इति कथनं क्व चरितार्थमिति वाच्यम्, वायुर्गन्धवान् स्नेहात् इत्यादिषु यत्र सर्वेऽपि हेत्वाभासाः सम्भवन्ति तत्स्थलाभिप्रायेण तदुक्तेरिति स्पष्टयन्नाह पञ्चत्वकथनन्तु इति ।

वर्णितरीत्यैव अनैकान्तिकस्य लक्षयति एवञ्चेति । आदिपदेनासाधारणानुपसंहारिणोर्ग्रहः । साधारणस्य कार्यमाह तेनेति । असाधारणस्य कार्यमाह तेनेति । असाधारणस्यान्यमाह यथेति ।

• सरस्वती •

तद्भिन्नभिन्नत्व ही हेत्वाभासत्व है । पाँच हेत्वाभास होते हैं ये कथन तो सम्भवस्थलों के अभिप्राय से है ।

साधारणादि अन्यतम को अनैकान्तिक कहते हैं । साध्यवान् से भिन्न में वृत्ति साधारण होता है, उससे व्याप्तिज्ञान का प्रतिबन्ध होता है । साध्यका असमानाधिकरण जो हेतु उसे असाधारण कहते हैं, उससे साध्यसामानाधिकरण्य ज्ञान को रोका जाता है । शब्द पक्ष, नित्यत्वसाध्य तथा शब्दत्वहेतुस्थल में असाधारण

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

शब्दो नित्यः शब्दत्वादित्यादावसाधारण्यं, शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादौ त्वसाधारण्यभ्रमः ।

अन्ये तु सपक्षावृत्तिरसाधारणः । सपक्षश्च निश्चितसाध्यवान् । इत्थञ्च शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादौ यदा पक्षे साध्यनिश्चयस्तदा नासाधारण्यम्, तत्र हेतोर्निश्चयादिति वदन्ति ।

अनुपसंहारी चात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यकादिः, अनेन व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः क्रियते ।

विरुद्धस्तु साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगी, अयं साध्याभावग्रहसा

❀ प्रभा ❀

ननु निश्चितसाध्यवान् सपक्षः, सकलसपक्षव्यावृत्तश्चासाधारणो भवति, तर्हि पक्षे साध्यनिश्चयसत्त्वे हेतोर्निश्चयात् नासाधारण्यम्, तदानीम् पक्षस्यैव सपक्षत्वेन निश्चितसाध्यवद्व्यावृत्तत्वाभावात् । यदा च पक्षे साध्यसन्देहस्तदा सम्भवति असाधारण्यमिति अनित्यदोषतामस्य व्यवस्थापयन्ति प्राचीनाः । तन्मतमाह अन्ये तु इति । तृतीयमनुपसंहारिणं निरुक्ति अनुपेति । फलमाह अनेनेति । साध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्ध इत्यर्थः । केवलान्वयिसाध्यके च अन्वयव्याप्तिज्ञानादेवानुमितिः ।

विरुद्धं लक्षयति साध्येति । फलमाह अयमिति । साध्याभावज्ञानसामग्रीत्वेन साध्याभावग्रहसाधकतया प्रतिबन्धकता । विरुद्धसत्प्रतिपक्षयोर्भेद व्यवस्था

❀ सरस्वती ❀

तथा शब्दपक्ष, अनित्यत्वसाध्य, शब्दत्वहेतुस्थल में असाधारणत्व का भ्रम होता है।

कोई कहते हैं कि सपक्ष में अवृत्ति असाधारण होता है। साध्य का निश्चय जिसमें हो उसे सपक्ष कहते हैं। अतः शब्दोऽनित्यः इस स्थल में पक्ष में साध्य का निश्चय रहने पर असाधारण्य नहीं, क्योंकि पक्ष में हेतु का निश्चय ही है। अत्यन्ताभाव के अप्रतियोगी साध्य आदि जहाँ मिलें वहाँ अनुपसंहारी होता है, इससे व्यतिरेकव्याप्तिज्ञान का प्रतिबन्ध होता है।

साध्यव्यापकीभूत अभाव के प्रतियोगी को विरुद्ध कहते हैं। यह साध्याभाव

॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॥

मर्पीत्वेन प्रतिबन्धकः । सत्प्रतिपक्षे प्रतिहेतुः साध्याभावसाधकः, अत्र तु हेतुरेवेति विशेषः । साध्याभावसाधक एव साध्यसाधकत्वेनोपन्यस्त इत्यशक्तिविशेषोपस्थापकत्वाच्च विशेषः ।

सत्प्रतिपक्षः साध्याभावव्याप्यवान्पक्षः । अगृहीताप्रामाण्यकसाध्यव्याप्यवत्त्वोपस्थितिकालीनगृहीताप्रामाण्यकतदभावव्याप्यवत्त्वोपस्थितिविषयस्तथेत्यन्ये ।

अत्र च परस्पराभावव्याप्यवत्त्वज्ञानात्परस्परानुमितिप्रतिबन्धः फलम् ।

अत्र केचित्—यथा घटाभावव्याप्यवत्त्वज्ञानेऽपि घटचक्षुःसंयोगे

• प्रभा • 31560

पयन्नाह सत्प्रतिपक्षे इति । अयमाशयः, साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः, विरुद्धे तु एक एव स एव हेतुः साध्यसाध्याभावयोरुभयोः साधक इति भूयान् भेदः । अधिकं दिनकर्याम् ।

सत्प्रतिपक्षं निरूपयति साध्याभावेति । सत्प्रतिपक्षव्यवहारौपयिकमन्याभिमतं लक्षणमाह अगृहीतेति । सत्प्रतिपक्षस्य दूषकताबीजमुपन्यस्यति अत्रेति ।

सत्प्रतिपक्षस्य सद्धेतुजनकत्वं दूषकताबीजं न तु अनुमितिप्रतिबन्धकत्वम्, तदभावव्याप्यवत्त्वज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे प्रमाणविरहादिति रत्नकोशकारमतं दूषयितुमुपन्यस्यति अत्र केचिदिति ।

• सरस्वती •

ज्ञान की सामग्री के रूप से विरोधी होता है । सत्प्रतिपक्ष में तो दूसरा हेतु साध्याभाव का उपस्थापक होता है, इसमें तो प्रकृत हेतु ही, इतना भेद है ।

साध्याभावव्याप्यवान् पक्ष को सत्प्रतिपक्ष कहते हैं । किसी का मत है कि नहीं गृहीत है अप्रामाण्य जिसका ऐसे साध्यव्याप्यवत्त्वोपस्थितिकालिक गृहीताप्रामाण्यक तदभावव्याप्यवत्त्वोपस्थिति का विषय ही सत्प्रतिपक्ष कहा जाता है ।

इसमें परस्पर अभावव्याप्यवत्त्वज्ञान से परस्पर अनुमिति का प्रतिबन्ध होता है । यहाँ पर किसी का मत है कि—जैसे घटाभावव्याप्यवत्त्वज्ञान होने पर भी

॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॥

सति घटवत्त्वज्ञानं जायते, यथा च शङ्खे सत्यपि पीतत्वाभावव्याप्यशङ्खत्ववत्त्वज्ञाने सति पित्तादिदोषे पीतः शङ्ख इति धीर्जायते, एवं कोटिद्वयव्याप्यदर्शनेऽपि कोटिद्वयस्य प्रत्यक्षरूपः संशयो भवति, तथा सत्प्रतिपक्षस्थले संशयरूपानुमितिर्भवत्येव। यत्र चैककोटिव्याप्यदर्शनं तत्राधिकबलतया द्वितीयकोटिभानप्रतिबन्धान्न संशयः। फलबलेन चाधिकसमबलभावः कल्प्यत इति वदन्ति।

तन्न, तदभावव्याप्यवत्त्वज्ञाने सति तदुपनीतभानविशेषस्याप्रमोषादेर-

॥ प्रभा ॥

भवत्येवेति। अनुमितिम् प्रति तदभावव्याप्यवत्त्वज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वे प्रमाणविरहात् अवश्यक्लृप्ततत्तदभावसामग्रीभिरेव तत्तदभावकोटिकसंशयानुमितौ सम्पन्नायाम् संशयानुमितिम् प्रति उभयव्याप्यवत्त्वनिश्चयत्वेन अतिरिक्तकारणत्वकल्पनारूपगौरव च न भवतीति हृदयम्।

नचैवम् उभयभासकत्वे तदुभयभानमिति कथिते पित्तादिदोषसत्त्वेऽपि पीतत्वशुक्लत्वोभयस्मृतौ उभयोर्भानमापद्येतेति शङ्कायामाह फलबलेनेति। तथाच तत्र पीतत्वप्रत्यक्षस्यैवानुभविकतया शुक्लत्वस्मृतेऽपि पित्तरूपदोषस्य प्रतिबन्धकत्वम् प्रकल्प्य पीतत्वप्रत्यक्षसामग्र्या अधिकबलवत्त्वम्। एवम् दूरत्वदोषे सत्यपि स्थाणुत्वपुरुषत्वयोः स्मृतौ संशयस्यैव उदयात् उभयसामग्र्योः समबलत्वमेव कल्प्यत इति।

एतन्मतमुपपाद्य खण्डयति तन्नेति। उपनीतभानम् = ज्ञानलक्षणा।

॥ सरस्वती ॥

चक्षु के संयोग से घटवत्त्वज्ञान हो जाता है, जैसे पीतत्वाभावव्याप्य शङ्खत्ववत्त्वज्ञान रहने पर भी पित्त आदि दोष से पीतः शङ्खः यह ज्ञान उत्पन्न होता है, कोटिद्वयव्याप्य के दर्शन होने पर भी कोटिद्वय का प्रत्यक्षरूप संशय होता है, वैसे सत्प्रतिपक्षस्थल में संशयरूपा अनुमिति होती ही है।

जहाँ पर एककोटिव्याप्यदर्शन होता है वा द्वितीयकोटि के ज्ञान का प्रतिबन्ध हो जाने से संशय नहीं होता। फलबल से ही समबलता तथा अधिकबलता की कल्पना होती है ऐसा कहते हैं।

परन्तु यह उचित नहीं, क्योंकि तदभावव्याप्यवत्त्वज्ञान होने पर उसके ज्ञान-

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

त्तुदयाल्लौकिकसन्निकर्षाजन्यदोषविशेषाजन्यज्ञानमात्रे तस्य प्रतिबन्धकता, लाघवात्, न तूपनीतभानविशेषे शाब्दबोधे च पृथक्प्रतिबन्धकता, गौरवात्। तथा च प्रतिबन्धकसत्त्वात्कथमनुमितिः? न हि लौकिकसन्निकर्षस्थले प्रत्यक्षमिव सत्प्रतिपक्षस्थले संशयाकारानुमितिः प्रामाणिकी येनानुमितिभिन्नत्वेनापि विशेषणीयम्। यत्र च कोटिद्वयव्याप्यवत्त्वज्ञानं तत्रोभयत्राप्रामाण्यज्ञानात्संशयो, नान्यथा, अगृहीताप्रामाण्यकस्यैव विरोधिज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वादिति।

असिद्धिस्त्वाश्रयासिद्ध्याद्यन्यतमत्वम्। आश्रयासिद्धिः पक्षे पक्षता-

❀ प्रभा ❀

ज्ञानमात्रे = लाद्यज्ञानत्वावच्छिन्ने। सत्प्रतिपक्षस्थले संशयाकारानुमितिर्न प्रामाणिकीति सिद्धान्तः। नन्वेवम् उभयव्याप्यवत्त्वनिश्चयात् प्रामाणिक संशयोऽपि कथमिति? समाधत्ते यत्र चेति। यत्र विरोधिज्ञाने अप्रामाण्य न गृहीतं तदेव प्रतिबन्धकम् इति भावः।

असिद्धिं लक्षयति असिद्धिरिति। आदिना स्वरूपासिद्धिव्याप्यत्वासिद्धी।

आश्रयासिद्धिं लक्षयति पक्ष इति। पक्षतावच्छेदकाभाववान् पक्ष एव तथेत्यु

❀ सरस्वती ❀

लक्षण, शाब्दबोध आदि के न होने से लौकिकसन्निकर्ष से अजन्य दोषविशेष से अजन्य ज्ञानमात्र में लाघवात् उसे प्रतिबन्धक मानते हैं। ज्ञानलक्षण तथा शाब्दबोध के लिये पृथक् प्रतिबन्धकता नहीं मानी जाती। तथा च प्रतिबन्धक रहने पर अनुमिति कैसे। लौकिकसन्निकर्ष में प्रत्यक्ष की तरह सत्प्रतिपक्षस्थल में संशयाकार *अनुमिति प्रामाणिक नहीं, अतः अनुमितिभिन्नत्वेन विशेष भी* नहीं कर सकते।

जहाँ पर कोटिद्वयव्याप्यवत्त्वज्ञान हो वहाँ दोनों में अप्रामाण्यज्ञान से संशय होता है, *अन्यथा नहीं, क्योंकि जिसमें अप्रामाण्य का ग्रहण कर लिया गया है* ऐसा विरोधिज्ञान प्रतिबन्धक [illegible] जायगा।

आश्रयासिद्धि आदि भेद से असिद्धि कई प्रकार की होती है। पक्ष में पक्षता-

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

वच्छेदकस्याभावः। यत्र च 'काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमानि'ति साध्यते तत्र 'पर्वतो न काञ्चनमय' इति ज्ञाने विद्यमाने काञ्चनमयपर्वते परामर्शप्रतिबन्धः फलम्।

स्वरूपासिद्धिस्तु पक्षे व्याप्यत्वाभिमतस्याभावः। तत्र च ह्रदो द्रव्यं धूमादित्यादौ पक्षे व्याप्यत्वाभिमतस्य हेतोरभावे ज्ञाते पक्षे साध्यव्याप्यहेतुमत्त्वज्ञानरूपस्य परामर्शस्य प्रतिबन्धः फलम्।

साध्याप्रसिद्ध्यादयस्तु व्याप्यत्वासिद्धिमध्येऽन्तर्भूताः। साध्ये साध्यतावच्छेदकस्याभावः साध्याप्रसिद्धिः। एतज्ज्ञाने जाते 'काञ्चनमयवह्नि-

• प्रभा •

दाहरति यत्र चेति। अत्र पक्षतावच्छेदकम् काञ्चनमयत्वम् पर्वतत्वं च। काञ्चनमयत्वाभावः पर्वते स्पष्ट एव। फलमाह तत्रेति।

स्वरूपासिद्धिं लक्षयति स्वरूपासिद्धिरिति। उदाहरति तत्रेति। व्याप्यो नाम व्याप्याश्रयः हेतुः, प्रकृते धूमः व्याप्यत्वेनाभिमतः। तस्माद् पक्ष इति। पक्षे हेतोरभावः स्वरूपासिद्धिरिति संकेतार्थः।

साध्याप्रसिद्धिसाधनाप्रसिद्धी व्याप्यत्वासिद्धावन्तर्भावयति साध्येति। तत्र साध्याप्रसिद्धिं प्रसङ्गात् लक्षयति साध्य इति। साध्यतावच्छेदकाभाववान् साध्यः तथा। उदाहरणमाह काञ्चनेति। साध्यः काञ्चनमयवह्निः, साध्यतावच्छेदकं काञ्च-

• सरस्वती •

वच्छेदक का अभाव ही आश्रयासिद्धि है। जहाँ पर 'काञ्चनमयपर्वत वह्निमान्' यह सिद्ध करते हैं वहीं पर 'पर्वत काञ्चनमय नहीं' ऐसे ज्ञान के रहने पर काञ्चनमयपर्वत में परामर्श का प्रतिबन्ध ही इसका फल होता है।

व्याप्यत्वेन अभिमत का पक्ष में अभाव ही स्वरूपासिद्धि है, ह्रदो द्रव्यं धूमात् इत्यादिस्थल में पक्ष में व्याप्यत्वाभिमतहेतु का अभाव ज्ञात होने पर साध्यव्याप्यहेतुमत्त्वज्ञानरूप परामर्श का प्रतिबन्ध ही फल होता है।

साध्याप्रसिद्धि आदि का व्याप्यत्वासिद्धि में अन्तर्भाव हो जाता है। साध्य में साध्यतावच्छेदक का अभाव ही साध्याप्रसिद्धि है। इससे 'काञ्चनमय-

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

मानित्यादौ साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यव्याप्यवत्त्वज्ञानरूपपरामर्श-प्रतिबन्धः फलम्।

एवं हेतौ हेतुतावच्छेदकस्याभावः साधनाप्रसिद्धिः, यथा काञ्चनमय-धूमादित्यादौ। अत्र हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतोर्ज्ञानाभावात्तद्धेतुकव्याप्ति-ज्ञानादेरभावः फलम्।

एवं वह्निमान् नीलधूमादित्यादौ गुरुतया नीलधूमत्वस्य हेतुतावच्-छेदकत्वमपि व्याप्यत्वासिद्धिरित्यपि वदन्ति।

● प्रभा ●

नमयत्वम्, वह्नित्वं च। तत्र पर्वते साध्ये साध्यतावच्छेदकस्य काञ्चनमयत्वस्या-भावः स्पष्टः।

साधनाप्रसिद्धिं स्पष्टयति एवमिति। उदाहरति यथेति। हेतुः साधनम्, काञ्चनमयधूमः, हेतुतावच्छेदकं काञ्चनमयत्वं धूमत्वं चेति धूमे काञ्चनमयत्वाभावः स्पष्टः, तस्मात् अत्रेति। गुरुधर्मस्यानवच्छेदकत्वमिति सिद्धान्तेन व्यर्थविशेषण-घटिते नीलधूमहेतौ हेतुतानवच्छेदकं नीलधूमत्वमपि व्याप्यत्वासिद्धेरुदाहरणम्।

केषांचिन्मतमुपस्थापयति एवमिति। नीलधूमे व्याप्तिसत्त्वात् व्याप्यत्वा-सिद्धिर्न भवतीति वदन्तीत्युक्त्वा स्वमतं स्पष्टयति विश्वनाथः। अधिकन्तु दिनकर्याम्।

● सरस्वती ●

वह्निमान्' इत्यादि में साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यव्याप्यवत्त्वज्ञानरूप परामर्श का प्रतिबन्ध होता है।

इसी प्रकार हेतु में हेतुतावच्छेदक का अभाव ही साधनाप्रसिद्धि है। इस से 'काञ्चनमयधूमात्' इत्यादिस्थल में हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतुज्ञान का अभाव होने से तद्धेतुकव्याप्तिज्ञानादि का अभाव हो जाता है।

ऐसेही 'वह्निमान् नीलधूमात्' इत्यादि स्थल में गुरुधर्म होने के कारण नील-धूमत्व हेतुतावच्छेदक न बन सकेगा, ऐसी स्थिति में व्याप्यत्वासिद्धि होगी ऐसा कहते हैं।

॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ॥

बाधस्तु पक्षे साध्याभावादिः । एतस्यानुमितिप्रतिबन्धः फलम् । तद्धर्मिकतदभावनिश्चयो लौकिकसन्निकर्षाजन्यदोषविशेषाजन्यतद्धर्मिकतज्ज्ञानमात्रे विरोधीति ।

न तु तत्र संशयसाधारणं पक्षे साध्यसंसृष्टत्वज्ञानमनुमितिकारणं तद्विरोधितया च बाधसत्प्रतिपक्षयोर्हेत्वाभासत्वमिति युक्तम्, अप्रसिद्धसाध्यकानुमित्यनापत्तेः, साध्यसंशयादिकं विनाप्यनुमित्युत्पत्तेश्च ।

॥ प्रभा ॥

बाधं लक्षयति बाधस्त्विति । आदिपदेन साध्यवदन्यत्वस्य पक्षवृत्तित्वाद्येश्च ग्रहणम् । फलमाह एतस्येति । प्रतिबन्ध्यप्रतिबन्धकभावस्वरूपमाह तद्धर्मिकेति । तद्धर्मिकतदभावनिश्चयः = अनाहार्याप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दित-तद्धर्मिकतदभावनिश्चयः । बाधबुद्धेरुत्पत्तिक्षणेऽपि लौकिकसन्निकर्षजन्यविशिष्टबुद्धिरनुभवसिद्धेत्यत आह लौकिकसन्निकर्षाजन्येति । शङ्खो न पीत इत्यादिनिश्चयेऽपि पित्तादिदोषात् शङ्खः पीत इति ज्ञानोदयात् आह दोषविशेषेति । कस्यचिन्मतं दूषयति नत्विति । पक्षे साध्यसंसर्गज्ञानमनुमितिजनकम्, तद्विरोधित्वेन च बाधसत्प्रतिपक्षयोः हेत्वाभासतेति तदाशयः । खण्डनयुक्तिमाह अप्रसिद्धेति । विशिष्टबुद्धिम् प्रति विशेषणज्ञानस्य कारणतया अप्रसिद्धसाध्यकस्थले विशेषणस्य साध्यस्य अज्ञानादिति भावः । नचेदृशी अनुमितिरेवाप्रसिद्धेति कथन्दोष इति वाच्यम्, साध्यसंशयादिकं विनापि घनगर्जितेन मेघानुमितेः प्रामाणिकत्वात् ।

पक्षविशेष्यकसाध्याभावज्ञाने प्रमात्वनिश्चयः अनुमितिप्रतिबन्धकस्तदभावश्च

॥ सरस्वती ॥

पक्ष में साध्याभाव आदि ही बाध है । अनुमिति का प्रतिबन्ध हो इसका फल है । तद्धर्मिकतदभावनिश्चय लौकिकसन्निकर्ष से अजन्य दोषविशेष से अजन्य तद्धर्मिक तज्ज्ञानमात्र में विरोधी होता है । पक्ष में साध्यसंसृष्टत्व ज्ञान ही अनुमिति का कारण है, तद्विरोधी होने के कारण बाध तथा सत्प्रतिपक्ष को हेत्वाभास कहा जाता है । यह ठीक नहीं, क्योंकि अप्रसिद्धसाध्यक अनुमिति न बनेगी, साथ ही संशय आदि के बिना भी अनुमिति की उत्पत्ति होने लगेगी । साध्याभाव-

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

एवं साध्याभावज्ञाने प्रमात्वज्ञानमपि न प्रतिबन्धकम्, मानाभावाद्गौरवाच्च । अन्यथा सत्प्रतिपक्षादावपि तदभावव्याप्यवत्त्वज्ञाने प्रमात्वविषयकत्वेन प्रतिबन्धकत्वापत्तेः । किन्तु भ्रमत्वज्ञानानास्कन्दितबाधादिबुद्धेः प्रतिबन्धकता । तत्र भ्रमत्वशङ्काविघटनेन प्रामाण्यज्ञानं क्वचिदुपयुज्यते ।

न च बाधस्थले पक्षे हेतुसत्त्वे व्यभिचारः, पक्षे हेत्वभावे स्वरूपासिद्धिरेव दोष इति वाच्यम्, बाधज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानादेर्भेदात् ।

● प्रभा ●

कारणमिति तादृशप्रमात्वमेव कार्यो नान्यादृश इति प्राचीनमत दूषयति एवमिति । प्रमात्वज्ञानम् = प्रमात्वनिश्चयः । मानाभावात् = तादृशज्ञानस्य विरोधित्वे प्रमाणविरहात् । गौरवादिति । तथाच निश्चयसाधारणः अप्रामाण्यज्ञानाभाव एव प्रतिबन्धकदले निवेश्यो न तु पक्षविशेष्यकसाध्याभावनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकता, स्पष्टगौरवादिति भावः । अन्यथा = ईदृशगौरवस्वीकारे । सत्प्रतिपक्षादौ इत्यादिना विरुद्धादिसंग्रहः । प्रतिबन्धकतापत्तेः = तुल्ययुक्त्या तथा वक्तुं शक्यत्वादिति भावः । सिद्धान्तमाह किन्त्विति । तथाच अनुमितितत्करणज्ञानान्यतरम् प्रति साक्षात् प्रतिबन्धकीभूतज्ञानविषयत्वाभावात् न साध्याभावज्ञानप्रमात्वं हेत्वाभास इति निष्कर्षः । व्यभिचारादिषु न बाधान्तर्भाव इति शङ्कते न चेति । उदरयति बाधेति । ज्ञानादेरित्यादिना असिद्धिज्ञानपरिग्रहः । तथा च बाधस्थले व्यभि-

● सरस्वती ●

ज्ञान में प्रमात्वज्ञान भी प्रतिबन्धक नहीं, क्योंकि न तो कोई प्रमाण ही है, न लाघव ही, प्रत्युत गौरव ही होगा ।

ऐसा न माना जाय तो सत्प्रतिपक्ष आदि में भी तदभावव्याप्यवत्त्वज्ञान में प्रमात्वविषयकत्वेन प्रतिबन्धकता हो जायगी । होता ऐसा नहीं, किन्तु भ्रमत्वज्ञान से अनास्कन्दित बाधज्ञान ही प्रतिबन्धक होता है । भ्रमत्व का सन्देह दूर करने के लिये प्रामाण्य का ज्ञान कहीं पर उपयुक्त होता है ।

प्रश्न—बाधस्थल में यदि पक्ष में हेतु रह जाय तो व्यभिचार, पक्ष में हेतु न रहे तो स्वरूपासिद्धि ही दोष हो जायगा, क्या आवश्यकता बाध की ?

उत्तर—बाधज्ञान व्यभिचारादिज्ञान से भिन्न सिद्धान्तित है । इतना ही

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

किञ्च यत्र परामर्शानन्तरं बाधबुद्धिस्तत्र व्यभिचारज्ञानादेरकिञ्चित्करत्वाद्बाधस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वं वाच्यम्। एवं यत्रोत्पत्तिक्षणावच्छिन्ने घटादौ गन्धव्याप्यपृथिवीत्ववत्त्वज्ञानं तत्र बाधस्यैव प्रतिबन्धकत्वं वाच्यम्।

न च पक्षे घटे गन्धसत्त्वात्कथं बाध इति वाच्यम्, पक्षतावच्छेदकदेशकालावच्छेदेनानुमितेरनुभवसिद्धत्वादिति।

बाधवद्व्याप्यभिन्ना ये हेत्वाभासास्तद्व्याप्या अपि तन्मध्य एवान्तर्भवन्ति। अन्यथा हेत्वाभासाधिक्यप्रसङ्गात्। बाधव्याप्यसत्प्रतिपक्षः

• प्रभा •

चाराद्यन्यतरनियमेऽपि बाधज्ञानस्य व्यभिचारादिविषयकत्वाभावेन बाधस्य हेत्वाभासान्तरता निराबाधा। यत्र व्यभिचारादयो न सम्भवन्ति तादृशमपि बाधस्थलं स्वतन्त्रमाह एवमिति। तत्रोत्पत्तिक्षणे द्रव्यं निर्गुणं निष्क्रियं चेति सिद्धान्तात्।

पञ्च हेत्वाभासा इति सङ्ख्याम् स्थिरीकर्त्तुमाह बाधवद्व्याप्येति। नचैवम् बाधव्याप्यतया सत्प्रतिपक्षोऽपि न स्यात् भिन्न इति वाच्यम्, स्वतन्त्रेच्छस्य मुनेः गौतमस्य नियोगपर्यनुयोगानर्हस्य सूत्रे सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमकालातीता इति-न्यायदर्शनीये सूत्रम् सत्प्रतिपक्षस्य पार्थक्येनोपदेशात्। साध्याभावव्या-

• सरस्वती •

नहीं, वहाँ पर परामर्श के अनन्तर बाधज्ञान हो, वहाँ पर व्यभिचारज्ञानादि कुछ नहीं कर सकते। अतः बाध को ही वहाँ पर अनुमितिप्रतिबन्धक मानना होगा। और भी उत्पत्तिक्षणावच्छिन्न घट में जहाँ गन्धव्याप्यपृथिवीत्ववत्त्व का ज्ञान हो रहा हो वहाँ बाधज्ञान को ही प्रतिबन्धकता माननी पड़ेगी।

प्रश्न—प्रकृतस्थल में घट में गन्ध रहता ही है, बाध कैसे?

उत्तर—पक्षता के अवच्छेदक जो देश तथा काल तदवच्छेदेन (उसमें) अनुमिति अनुभवसिद्ध है। अतः उत्पत्तिकाल में गन्धाभाव को लेकर बाध बन जायगा।

बाध तथा उसके व्याप्य से भिन्न जो अन्य हेत्वाभास उनके व्याप्य भी उन्हीं में अन्तर्भूत हो जायेंगे। अन्यथा हेत्वाभासों की संख्या बढ़ जायगी। बाधव्याप्य

❀ कारिकावली ❀

आद्यः साधारणस्तु स्यादसाधारणकोऽपरः ।
तथैवानुपसंहारी त्रिधाऽनैकान्तिको भवेत् ॥ ७२ ॥
यः सपक्षे विपक्षे च भवेत्साधारणस्तु सः ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

भिन्न एव, स्वतन्त्रेच्छेन मुनिना पृथगुपदेशात् । सत्प्रतिपक्षस्याव्याप्यत्तु न प्रतिबन्धक इति प्रघट्टकार्थः ॥ ७१ ॥

य सपक्ष इति । सपक्षविपक्षवृत्तिः साधारण इत्यर्थः । सपक्ष = निश्चितसाध्यवान् । विपक्ष = साध्यवद्भिन्न । विरुद्धवारणाय सपक्षवृत्ति-त्वमुक्तम् ।

वस्तुतो विपक्षवृत्तित्वमेव वाच्यम्, विरुद्धस्य साधारणत्वेऽपि दूषक

• प्रभा •

प्यसाध्यवत्त्वज्ञानस्य साध्यवत्त्वज्ञानविरोधित्वे मानाभावादाह न प्रतिबन्धक इति । कारिकायदीपक्रमे साधारणमाह य इति । विपक्षवृत्तित्वमेव यदि साधारणलक्षण स्यात्तदा विरुद्धेऽतिव्याप्तिरत आह सपक्षवृत्तित्वमिति । इष्टापत्त्या तथापि हानिर्नेत्याह वस्तुत इति । विपक्षवृत्तित्वमेव लक्षणमस्तु, विरुद्धे यत्तु नाम का हानि ?

• सरस्वती •

होने पर भी सत्प्रतिपक्ष भिन्न ही रहेगा, उसका अन्तर्भाव नहीं करना । क्योंकि स्वतन्त्रेच्छ महामुनिगौतम ने अपने न्यायदर्शन 'सव्यभिचार-विरुद्ध-प्रकरण-सम-साध्यसमकालातीता हेत्वाभासाः' इस सूत्र में स्पष्ट ही उसे पृथक् माना है। सत्प्रतिपक्ष का व्याप्य प्रतिबन्धक ही नहीं होता, अतः उसकी कोई चिन्ता नहीं। कारिकावली के क्रमानुसार अब हेत्वाभासों की प्रतिविधि का प्रदर्शन कर रहे हैं— साधारण इत्यादि । जो सपक्ष तथा विपक्ष दोनों ही में रहे उसे साधारण कहते हैं । जिसमें साध्य का निश्चय हो चुका हो उसे सपक्ष कहते हैं । साध्यवान् से भिन्न को विपक्ष कहते हैं । विरुद्ध में लक्षण की अतिव्याप्ति न हो जाय इसलिये सपक्षवृत्तित्व भी कहा ।

वस्तुतः विपक्षवृत्तित्वमात्र ही लक्षण करना चाहिये । विरुद्ध में लक्षण रहा

❀ कारिकावली ❀

आश्रयासिद्धिराद्या स्यात्स्वरूपासिद्धिरप्यथ ।
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा स्यादसिद्धिरतस्त्रिधा ॥७५॥
पक्षासिद्धिर्यत्र पक्षो भवेन्मणिमयो गिरिः ।
ह्रदो द्रव्यं धूमवत्त्वादत्रासिद्धिरथापरा ॥७६॥
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा नीलधूमादिके भवेत् ।

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

असिद्धिं विभजते—आश्रयासिद्धिरित्यादि ॥ ७५ ॥

पक्षासिद्धिरिति । आश्रयासिद्धिरित्यर्थः । अपरेति । स्वरूपासिद्धि-रित्यर्थः ॥ ७६ ॥

नीलधूमादिक इति । नीलधूमत्वादिकं गुरुतया न हेतुतावच्छेदकं स्वसमा-

* प्रभा *

व्याप्तिः । असिद्धिं विभजते आश्रयेति । आद्याम् आश्रयासिद्धिम् पक्षासिद्धिनाम्नी मुदाहरति मणिमय इति । स्वरूपासिद्धिमुदाहरति ह्रद इति ।

तृतीयां व्याप्यत्वासिद्धिमुदाहरति नीलधूमादीति । तत्र 'सम्भवति लघौ धर्मे गुरौ तदभावात्' इत्यवच्छेदकतावादसिद्धान्तेन नीलधूमत्वापेक्षया धूमत्वस्य लघोर-वच्छेदकत्वमिति स्पष्टयति गुरुतयेति । व्यर्थविशेषणघटितहेतुस्थले व्याप्यता-वच्छेदकः क इति निर्वक्ति स्वसमेति । पर्वतो वह्निमान् नीलधूमादितिस्थले प्रकृतः साध्यो वह्निः, तस्य व्याप्यः धूमः, व्याप्यता धूमनिष्ठा, व्याप्यतावच्छेदक धूमत्वम्, अतः स्वम् नीलधूमत्वम् तत्समानाधिकरण प्रकृतसाध्यव्याप्यतावच्छेदक धर्मान्तरम् धूमत्वम्, तद्घटितत्व नीलधूमत्वस्य, इति न नीलधूमत्व व्याप्यतावच्छेदकमिति ।

* सरस्वती *

असिद्धि तीन प्रकार की १ आश्रयासिद्धि २ स्वरूपासिद्धि ३ व्याप्यत्वासिद्धि । आश्रयासिद्धि को ही पक्षासिद्धि भी कहते हैं । उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं । नीलधूमादिस्थल में व्याप्यत्वासिद्धि होती है । गुरुधर्म होने से नीलधूमत्व

❀ कारिकावली ❀

विरुद्धयोः परामर्शे हेत्वोः सत्प्रतिपक्षता ॥७७॥

❀ न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ❀

नाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तराघटितस्यैव व्याप्यतावच्छेदकत्वात् । धूमप्रागभावस्यसंग्रहाय स्वसमानाधिकरणेति ।

विरुद्धयोरिति । कपिसंयोगतदभावव्याप्यवत्त्वपरामर्शेऽपि न सत्प्रतिपक्षितत्वमत उक्तविरुद्धयोरिति । तथाच स्वसाध्यविरुद्धसाध्याभावव्याप्यवत्त्वपरामर्शकालीनसाध्यव्याप्यवत्त्वपरामर्शविषय इत्यर्थः ॥७७॥

• प्रभा •

स्वस्य स्वाविषयकप्रतीतिविषयत्वरूपस्याघटितत्वाभावाद् धर्मान्तरेति । नच नीलधूमत्वस्यापि तद्घटकधर्मान्तराघटितत्वमस्त्येव धूमत्वस्य नीलधूमत्वभिन्नत्वाभावादिति वाच्यम्, स्वाविषयकप्रतीतिविषयत्वस्य स्वपर्याप्तावच्छेदकतानिरूपकप्रकारतानिरूपितावच्छेदकतापर्याप्त्यनाधिकरणत्वपर्यवसितस्य तदर्थत्वात् । शुद्धधूमत्वपर्याप्तावच्छेदकताकप्रकारत्व नीलत्वादिविशिष्टधूमत्वपर्याप्तावच्छेदकताकप्रकारत्वयोर्भेदात् ।

सत्प्रतिपक्ष निरूपयति विरुद्धयोरिति । स्वसाध्येति । स्व सत्प्रतिपक्षत्वेनाभिमतो हेतु, तत्साध्यविरुद्धो य साध्याभाव इत्यर्थः ।

• सरस्वती •

आदि हेतुतावच्छेदक नहीं क्योंकि स्वसमानाधिकरण ·····इत्यादि नियमानुकूल ही व्याप्यतावच्छेदक बन पाता है । धूमप्रागभाव के संग्रह के लिये स्वसमानाधिकरण कहा ।

दो विरुद्धपरामर्शों से सत्प्रतिपक्ष होता है । कपिसंयोग, कपिसंयोगाभावव्याप्यवत्त्वपरामर्श रहने पर सत्प्रतिपक्ष नहीं होता, क्योंकि विरुद्ध परामर्श की अपेक्षा होती है । अत स्वसाध्य के विरुद्ध साध्याभावव्याप्यवत्त्वपरामर्शकालिक जो साध्यव्याप्यवत्त्व का परामर्श वही सत्प्रतिपक्ष का स्थल होता है ।

❀ कारिकावली ❀

साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः ।
उत्पत्तिकालीनघटे गन्धादिर्यत्र साध्यते ॥७८॥

साध्यशून्य इति । पक्ष =पक्षतावच्छेदकविशिष्ट इत्यर्थं । गन्धसत्त्वेऽपि न क्षति । एवं मूलावच्छिन्नो वृक्ष कपिसंयोगी योऽयम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीविश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्यविरचितायां
सिद्धान्तमुक्तावल्यामनुमानखण्डम् ।

——❀——

• प्रभा •

बाध लक्षयति साध्यशून्य इति । सर्वत्र घटे बाध ईदृशो न सम्भवति कालावच्छेदकतामाह उत्पत्तिकालीनेति । उत्पत्तिक्षणे द्रव्य निर्गुणमिति उत्पत्तिकालावच्छिन्ने घटे गन्धाभाव इत्यर्थ । देशस्यापि अवच्छेदकता निवेश्येत्याह एवमिति । मूले वृक्षे न कपिसंयोग किन्तु शाखायामितिरीत्या मूले कपिसंयोगाभावावच्छिन्ने कपिसंयोगवत्त्वप्रतिपादने बाध स्पष्ट इत्याशय ।

इति श्रीरामनारायणशास्त्रिशुक्लरचित न्यायसिद्धान्तमुक्तावल्यनु
मानखण्डभाष्यम् प्रभाभिधानं समाप्तम् ।

• सरस्वती •

साध्य से शून्यपक्षको बाध कहते हैं । विशिष्ट व्याख्या पहले हो चुकी है ।

इति श्रीराजनारायणशास्त्रिशुक्ल कृता अनुमानखण्ड सरस्वतीटीका ।